लापता

# लापता

प्रभाकर माचवे

राजपाल एण्ड सन्ज़, कश्मीरी गेट, दिल्ली

वह समुन्दर किनारे आकर बैठ गया। दूर-दूर तक बालू फैली हुई थी। कुछ काले पत्थर थे। सुनसान था। 'बीच' पर के नारियल के पेड़ हवा में सिर हिलाते थे। शायद समुन्दर ही उनकी भाषा जानता हो। समुन्दर खिलखिला कर हँस रहा था। पेड़ गर्दन हिला-हिलाकर उनके साथ संवाद कर रहे थे।

एक टूटी हुई नाव बालू में फँसी हुई थी। कुछ मछुआरे लड़के वहाँ जाल सुखा रहे थे। शाम का समय था। और उसके लिए समस्या थी कि वह रात को कहाँ जायेगा। क्या करेगा?

वह घर से भागकर किसी ट्रेन में बैठकर, बिना टिकिट, इतनी दूर तक तो आ गया। उसने जान-बूझकर ऐसा रूप बना लिया था कि वह पागल है और वह सब अपना-पुराना अता-पता भूल चुका है। फिर उसके मन में आता था कि घरवालों से ऐसा गुस्सा नहीं करना चाहिए। पर वहाँ उसे कोई प्रेम देनेवाला नहीं था। सौतेली माँ रात-दिन गाली देती, कटु वचन कहती। बाप को अपने परीक्षा के फेल होते रहने वाले दुबले-पतले बेटे की सिवा मारने के, और सुधि लेने की फुरसत नहीं थी। और भाई-बहन आत्मकेन्द्रित थे। यही सबसे बड़ा था और निकम्मा था।

वहाँ वह वैसे ही बड़ी देर तक बैठा था। तब एक बूढ़ा उसके पास लकड़ी टेकता-टेकता आया। दोनों की बातें शुरू हुई :

बूढ़ा : "तुम कौन हो ? और क्या करते हो ?"

नौजवान · "इन दोनों सवालों के जवाब मेरे पास नहीं है ?"

बूढ़ा · "तो यहाँ क्यों बैठे हो ?"

नौजवान : "और कुछ करने को नहीं है. इसलिए सूर्यास्त देख रहा

हूं।"

बूढ़ा : "उसमें तुम क्या देखते हो ?"

नौजवान : "कितना सुन्दर है !"

बूढ़ा : "क्या सौन्दर्य से पेट भरेगा ?"

नौजवान : "आप वह सामने चर्च देख रहे हैं। उसमें घंटी बज रही है। आपकी उस आवाज में आस्था है। क्या उससे पेट भरेगा ?"

बूढ़ा : "अब थोड़ी देर बाद रात हो जायेगी। और यह क्षणिक सौन्दर्य समाप्त हो जायेगा।"

नौजवान : "मैं उसे पेटभर कर देखूंगा। वही आज शाम का मेरा आहार है ?"

बूढ़ा : "कहां रहते हो ?"

नौजवान : "नहीं जानता ?"

बूढ़ा : "कहां जाओगे ?"

नौजवान : "नहीं जानता ?"

बूढ़ा : "कहां से आये हो ?"

नौजवान : "मैं नहीं जानता। आप भी नहीं जानते। कोई भी नहीं जानता।"

बूढ़े को दया हो आई। बोला—"मेरे साथ चलोगे ?"

नौजवान ने कहा—"क्यों नहीं ?"

बूढ़ा ईसाई था। वह अपने घर पर उसे ले गया। उसकी वृद्धा पत्नी मेरी और एक नौजवान लड़की घर में थी जिसका नाम था एडिथ।

नौजवान अपने पूर्वेतिहास के बारे में कुछ भी बताने को तैयार नहीं था। मानो सब भूल चुका था। ऐसे स्मृतिहीन व्यक्ति को घर में क्यों ले आये, इस बात पर मेरी और पीटर में बड़ी बहुत बहस हुई।

मेरी : "कैसे-कैसे लोगों को घर में ले आते हो ?"

पीटर : "हूं...।"

मेरी : "ऐसे लोगों को घर में रखने खिलाने, आश्रय देने से कोई फायदा ?"

पीटर : "हूं...।"

मेरी : "बोलते क्यों नहीं ? दो दिन देखूंगी, बाद में निकाल दूंगी। पता नहीं कहां का चोर-उचक्का, गुंडा ही हो। अपनी भाषा तक नहीं जानता।

पीटर : "अंग्रेजी तो जानता है। क्या हर आदमी जो घर में आता है, मलयालम अवश्य जाने ही, ऐसा कोई साइनबोर्ड बाहर क्यों नहीं लगा देती ?"

मेरी : "तुम तो हर वक्त मजाक करते रहते हो। यह मजाक का विषय नहीं है।"

पीटर : "फिर क्या करूं ? बाइबिल में लिखा है 'सब मनुष्यों से प्यार करो।' मैं सिर्फ उसी वचन को जीवन में उतार रहा हूं।"

मेरी : "बड़े आये बाइबिल वाले ! तुमने कभी अपने 'बॉस' को प्यार दिया ? रात-दिन खिट-खिट चलती रहती है। तुमने मेरी मां—यानी अपनी सास को इज्जत दी ? तुमने कभी...जाने दो। यह तालिका लंबी है। बस अजनबियों को ही आप प्यार देना जानते हैं, और उसमें भी अगर वह कहीं स्त्री हुई, तो क्या कहने हैं..."

पीटर : "आज की रात वह रहेगा। कल लोग पूछेंगे, क्या काम कर सकता है ? और कुछ नहीं तो अपने अखबार के प्रेस में ही काम आ जायेगा।"

मेरी : "ऐसे भुलक्कड़ों और पागलों से आपका प्रेस चल चुका।"

पीटर : "कोशिश करके देखना चाहिए।"

मेरी : "यह पत्थर से पानी निकाले जाने की-सी बात है। इसके चेहरे-मोहरे से मुझे तो छटा हुआ बदमाश जान पड़ता है।"

पीटर : "अपनी-अपनी दृष्टि है।"

इतने में एडिथ आ गई। उसने भी वही सवाल पूछा —यह नवागन्तुक महाशय कहां के हैं ? क्या करते हैं ? कितने दिन रहेंगे, इत्यादि। उत्तर में सिर्फ उनका नाम मिला जो अब पिताजी के दोस्त थे। यह नया आदमी खतरनाक लगता है; अंदरूनी बातें वह जानता है। कैसे ?

—क्या वह गुप्तचर है ?

—क्या वह कोई पहुंचा हुआ साधु है ?

—क्या वह सचमुच का मुसीवतज़दा है ?

—क्या वह घर छोड़कर भागकर आया प्राणी है ?

—क्या वह वेश छिपाये कोई शरणार्थी है ?

—क्या वह पूर्णत: स्मृति-हारा है ?

कई तरह की शंकाएं मन में उठते हुए भी इस अनाम नवयुवक को अपने घर में पीटर ने आश्रय दे दिया। वह थका-मांदा था; जो भी खाने को मिला खाया और वह सो गया।

सवेरे उठा तो उसने अपने साथ की स्लीपिंग वैग को खोला। उसमें दो जोड़ी कपड़े थे। नहाया। अपने कपड़े धोकर के सुखाने डाले। पीटर की छोटी-सी रहने की जगह में वह वाहर के कमरे में आ वैठा। वड़े से अनेक वैंडोंवाले रेडियो पर खबरें चल रही थीं, उनके वाद खोये हुए व्यक्तियों की सूचनाएं सुनाई गईं। यह दिल्ली रेडियो है—

—एक नवयुवक जिसने नीली-भूरी पतलून और चेक का लाल वुश्शर्ट पहन रखा है, कद 5 फीट, उम्र तीस लाल, क्लीन शेवन, माथे के वाल घुंघराले, आंखें नीली-हरी, घर से भाग गया है। वह वी०ए० में पढ़ता था। अंग्रेज़ी, हिन्दी दोनों भाषाएं जानता है। उसका नाम अरविंद है। यदि किसी को पता लगे तो वह निम्न पते पर सूचना दे। खोज निकालने वाले को 2000 रुपये इनाम दिये जायेंगे। निशानी वायें गाल पर ठुड्डी के पास तिल है। सूचना देने का पता :

शिवनाथ मलहोत्रा
सेक्टर तीन, क्वार्टर न० एक सौ आठ,
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110022

पहले उसने हिकारत से मन में सोचा—मेरे दाम सिर्फ दो हजार रुपये ?

फिर पूरी सूचना सुन लेने के वाद उसने स्विच ऑफ करके रेडियो वंद कर दिया। दाढ़ी मूंछ तो वढ़ा ही ली थी। सो चेहरे की एक पहचान 'क्लीन शेवन' से वह वच गया। वालों का घुंघरालापन और आंखों का रंग तो वह छिपा नहीं सकता था। हां कपड़े उसने वदल डाले थे। और हिन्दी भी वह जान वूझकर, विगाड़ कर टूटी-फूटी वोलता था। यहां

सुदूर केरल में वह अपनी मातृभाषा बंगाली बता दे तो क्या बिगड़ता है ? अब उसने सोचना शुरु किया कि कोई नाम जरूर लेना चाहिए, जो बंगालियों की तरह हो ?

शरच्चन्द्र ? बड़ा 'कॉमन' नाम है।

वंकिमचन्द्र ? ऐसा नाम बड़ा 'अनकॉमन' है।

उसने सोचा—'देवीप्रसाद' नाम सबसे अच्छा रहेगा। कलकत्ता वह कभी नही गया था पर हां वहा काली का मंदिर है। और सुनते हैं कि वहां देवी के नाम पर बहुत नाम हैं, पुरुषों के भी—जैसे कालीकिंकर, कालीप्रसाद, कालीकृष्ण, श्यामाचरण, श्यामाप्रसाद, श्यामानंद, ताराशंकर, तारापद, देवीपद, देवीदास, देवीप्रसाद...बस-बस देवी का प्रसाद ही सबसे अच्छा नाम है। अब अपनी शिक्षा और कार्यकलाप का क्या किया जाये ? बता दूंगा मैट्रिक हूं। किसी अखबार में काम करता था। जहां जरूरत होगी बता दूंगा राजनैतिक कारणों से भाग आया। पुलिस मेरे पीछे लगी है।

उसने सोचा कि यह बातें 'एडिथ' को ही धीरे-धीरे बतानी ठीक होंगी। क्योंकि उसके मन में सहानुभूति जगाना अधिक उचित होगा। एडिथ की मा मेरी तो मुझे फूटी आंखों से देखना पसन्द नही करती थी। कहूंगा—'कहीं काम लगा दे। किसी पत्र पत्रिका में अंग्रेजी की। या छोटी-मोटी क्लर्की ही सही। या फिर प्राइमरी स्कूल मे टीचरी।' मैट्रिक करने में कोई सर्टीफिकेट नही पूछेगा। बी०ए० एम०ए० के साथ प्रमाणपत्र आदि का चक्कर है। सो अब अरविंद मलहोत्रा साहब की नयी 'इमेज' तैयार हो गई।

देवी प्रसाद सेन, बंगाल के रहने वाले, मैट्रिक, एक राजनैतिक पत्र में संवाददाता, राजनैतिक कार्यकर्ता भी, वहां पुलिस पीछे पड़ी थी सो भाग आये। यहा तक सब मामला ठीक हुआ। पर एक बहुत बड़ी अड़चन सामने आ गयी, जिसका उसने पहले से विचार नही किया था।

एडिथ के साथ बातें करते हुए उसने चुपचाप यह सब बातें बता दी। मा और बाप दोनों काम करने के लिए बाहर चले जाते थे। एडिथ वय: प्राप्ता थी, और पर-पुरुष में उसका कुतूहल स्वाभाविक था।

आखिर दो तीन दिन बाद उसने कुतूहलपूर्वक पूछ ही लिया :

"देवी तुम कौन से राजनैतिक दल में विश्वास करते हो ?"

आव देखा न ताव देवी ने कह दिया, "गुप्त संगठन में। हम समाज को पूरी तरह बदल डालेंगे। रक्तक्रांति से अलावा कोई भी रास्ता हमें पसंद नहीं। लोग हमें मार्क्सिस्ट (एम० एल०) कहते हैं। पर हम उनसे भी अधिक वाम-पंथी हैं।"

"देवी, यह बुरी बात तुमने कही। पापा को पता लग जायेगा, तो वह एक दिन भी तुम्हें घर में नहीं टिकने देंगे। वे कट्टर क्रिश्चियन हैं।"

"तो क्या हुआ ? हम पूंजीपतियों, साम्राज्यवाद के एजंटों, सामंत-वादियों, प्रतिक्रियावादी रूस-परस्त, चीन-परस्त तथाकथित साम्य-वादियों, लुंपेन समाजवादियों आदि सबके विरुद्ध हैं। हमें क्रिश्चियन या हिन्दू या मुस्लिम से क्या लेना देना है ? धर्म तो व्यक्तिगत वस्तु है। वह आज पूरी तरह वर्गाक्रांत है।"

"मुझे तो तुम समझा दोगे। क्योंकि (धीरे से) इतना अधिक रात-दिन घर में माता-पिता से धर्म के बारे में सुनती रहती हूं कि अब मेरी धर्म में कोई आस्था नहीं है। लेकिन पापा नहीं मानेंगे···"

"तो इस बात को छिपा देते हैं। ऐसा कहूंगा कि मैं एक बिना किसी पार्टी के स्वतंत्र पत्र के कार्यालय में कार्य करता था। बस इस पर तुम राजी हो जाओगी ?"

"ठीक है ! मुझे तुम खतरनाक आदमी लगते हो। क्रांतिकारियों के प्रति मेरे मन में बचपन से कुतूहल है। मैंने अपनी भाषा मलयालम में शरच्चंद्र का 'पथ के दावेदार' पढ़ा है उसमें सव्यसाची के बारे में पढ़ा है। मैंने जैनेन्द्रकुमार की 'सुनीता' पढ़ी है। उसमें वह हरिप्रसन्न है। मैंने यशपाल का 'दादा कामरेड' पढ़ा है। क्रांतिकारी आग की तरह होते हैं। उनसे दूर ही रहना अच्छा। ताप सुखद होती है। उत्ताप घर जला देता है···"

उस दिन इतनी ही बात हुई। पर एडिथ फिर सोचने लगी—'क्यों नौजवान यों नक्सल हो जाते हैं ? क्या उनके सामने और कोई रास्ता नहीं है ?'

# 2

पापा से एडिथ ने कहा कि इस राह भूले नौजवान पर उपकार करें। कहीं काम पर लगा दें तो दोहरे लाभ हैं। एक तो ईसाई होते हुए 'गुड सैमेरिटन' का सवाब मिलेगा। दूसरे अब बूढ़े पिता को घर में एक सहायक, सहारा भी मिल जायेगा। तब तक मेरा मेडिकल कोर्स पूरा हो जायेगा। मुझे गल्फ एरिया में बड़ी लम्बी चौड़ी तनख्वाह वाली नौकरी भी मिल जायेगी। फिर तब तक देखी जायेगी। यह बंगाली बाबू तब तक भाग जायेगा। सो अच्छा हो कि इसे ईसाई ही बना लिया जाये। एक और चेला मूंडने का सुख क्या कम है—पीटर ने सोचा।

पीटर ने देवी से पूछा—"अब क्या करोगे?"

"जो आप कहें?"

"मेरे कहने की बात नहीं। यहां की भाषा तो तुम जानते नहीं?"

"ऐसा काम दिलवाइये कि जिसमें भाषा का व्यवधान आडे न आये।"

"यही सोच रहा हूं। पत्र के लिए तो भाषा ज्ञान की बहुत आवश्यकता हो जाती है। मैं मलयालम जानता नहीं। और पूरे केरल में जहां [illegible] से ऊपर मलयालम के पत्र हैं, अंग्रेजी का कोई अखबार नहीं था। (अभी हाल में एक शायद निकला है।) ऐसी दशा में क्या करें?"

"मेरा भी अखबार पर कोई आग्रह नहीं। जो काम कहेंगे, कर दूंगा। अखबार न सही, कहीं अपने प्रभाव से, हमें लगवा दीजिये, किसी और काम में···।"

चर्च की ओर से एक हाईस्कूल चलता था। उसमें एक क्लर्क की जगह खाली थी। वहां पीटर के कहने से देवी को काम मिल गया।

अब वह कमरा तलाश करने लगा। जगह मिलनी मुश्किल थी। परन्तु कुछ दिनों के लिए चर्च की डार्मिटरी में ही देवो रहने लगा।

वहां उसकी मुलाकात कई तरह के पादरियों और ईसाई विद्यार्थियों और छात्राओं से होने लगी। वह जान-बूझकर किसी से बहस नहीं

छेड़ता था। चुपचाप सबकी बातें सुनता था। देवी को लगा कि क्या हिंदू क्या ईसाई, क्या मुस्लिम, क्या सिख सबके सब एक तरह से दिशाहारा और शरणार्थी हैं। विचारों की दुनिया के मायावी हैं। उनका कोई सिद्धांत नहीं, विश्वास नहीं, मतवाद नहीं—यह बात सच नहीं थी। सब एक खूंटे से बंधे थे। इसी से वे और लोगों से नफरत करते थे, जो उनके 'मत वाले' न हों।

पर उनकी सबकी आत्मा 'ला-पता' थी।

वे धर्म की प्रधान पुस्तक को मानते थे। पंडित या पादरी या पीर को मानते थे। उसके पास उन्होंने अपनी बुद्धि रहन रख दी थी। शंका करना ही हर धर्म में मना था। वह धर्मद्रोह था। तर्का-प्रतिष्ठानात्।

देवी को लगा कि जब आदमी अपने ऊपर ओढ़ा हुआ, या जन्म से उसके नाम की तरह चिपका हुआ धर्म का लेबल छोड़ देता है; या उससे परे सोचता है, तो उसके सामने प्रश्न होता है कि वह असली इन्सान वह मूलभूत मनुष्य क्या है? क्या उसमें आत्मा, कोई सद्असद् का विवेक करने वाला दिव्यांश नहीं होता? वही तो मुख्य चीज है। वही खोकर वह क्या पाता है?

एडिथ ने धीरे-धीरे उससे पूछ ही लिया—"देवी, तुम ईसाई क्यों नहीं हो जाते?"

वह विचारपूर्वक, हर शब्द तोल कर बोला—"आप कहती हैं तो सोचूंगा। पर सच बताऊं धार्मिक नहीं हूं। किसी भी धर्म का ठप्पा लगाने से क्या होगा?"

एडिथ—"क्यों?"

देवी—"मैं पापी हूं…"

एडिथ—"इसीलिए तो धर्म की शरण लेनी चाहिए।"

देवी—"जो पाप मनुष्य करता है उसे कोई धर्म धो नहीं सकता।"

एडिथ—"ईसाई धर्म में सब तरह के पापियों के लिए पनाह है, शरण है।"

देवी—"धर्म शुरू ही इस बात से होते हैं कि मनुष्य पाप छोड़ दें।"

एडिथ—"हां,"

देवी—"पर मेरे पाप तो मेरी मृत्यु के बाद ही शायद छूटेंगे। वे जन्म से ही शुरू हुए। जन्म से ही जुड़े हुए हैं।"

एडिथ—"यह कैसे हो सकता है?"

देवी—"अगर कोई बच्चा पाप की सन्तान हो, तो उसके सिर पर वह सिक्का जनम भर के लिए लग जाता है।"

एडिथ—"ईसाई धर्म में ऐसा नहीं है।"

देवी—"और अगर उसने बचपन में कोई पाप किया हो तो?"

एडिथ—"बच्चे सब निष्पाप होते हैं। ऐसा कभी हो ही नहीं सकता कि बच्चा पापी हो। वह पाप पुण्य से परे होता है।"

देवी—"कई कलाकार भी अपने आपको ऐसा ही मानते हैं।"

एडिथ—"वे झूठ बोलते हैं..."

देवी—"हो सकता है। पर तुम धर्मांतर की बात क्यों उठाती हो?"

एडिथ—"हमें उससे सुख होगा।"

देवी—"केवल तुम्हारे सुख के लिए मैं अपना धर्म तज दूं?"

एडिथ—"नहीं हमारा धर्म श्रेष्ठ है, इसलिए तुम उसमें आओ।"

देवी—"जो आदमी एक बार धर्म बदल सकता है, वह दुबारा नहीं बदलेगा इसकी क्या गारंटी है?"

एडिथ—"धर्म कोई कपड़ा नहीं जो चाहे तब उतारा, चाहे तब पहन लिया।"

देवी—"यही तो मैं कहता हूं।"

एडिथ—"पर हिन्दू धर्म तो ऐसा कड़ा बंधन नहीं। वह उस अर्थ में 'मजहब' नहीं है। वह तो केवल एक जीवन-पद्धति है।"

देवी—"क्यों बहस कर रही हो एडिथ? किसी भी धर्म में विश्वास न करना भी तो एक जीवन-पद्धति हो सकती है।"

एडिथ—"ऐसे लोगों को हम क्या कहें? मनुष्य नहीं मानते। ऐसे अधर्मी मनुष्य में और पशु में क्या अंतर है?"

देवी—"क्या पशु बनना पाप है?"

एडिथ—"हां।"

देवी—"मनुष्य ने धर्म कब निर्माण किया ?"

एडिथ—"क्यों ?"

देवी—"उसके पहले वह क्या था ? यानी आज, अब 1983 वर्ष ईसा को सूली पर दिये हुए। ईसवी सन तभी से चला। उसके पहले सब आदमी क्या थे ? जानवर ?"

एडिथ—"यह कैसे हो सकता है ?"

देवी—"क्यों, कोई सभ्यता उससे पहले थी ?"

एडिथ—"हां, यूरोप में ग्रीक सभ्यता थी।"

देवी—"यूनान के लोग तो कई देवी-देवता मानते थे। मूर्तिपूजक थे। जैसे हिन्दू…।"

एडिथ—"हां ईसा के पहले भी धर्म रहे होंगे ?"

देवी—"चीन में कनफ्यूशस से पहले के धर्म। भारत में बुद्ध और महावीर और मिस्र में पितर पूजा और ईरान में सूर्य पूजा…"

एडिथ—"यह सब प्रकृति के तत्त्वों को ईश्वर मानना धर्म थोड़े ही है।"

देवी—"फिर धर्म क्या है ?"

एडिथ—"ईसा को मानना, सलीब पर उसे चढ़ाया गया यह मानना ईसा की पवित्र वाणी 'बाइबिल' को मानना…"

देवी—"बस ? देखो एडिथ, अगर मैं कहूं कि मैं केवल मनुष्य को मानता हूं। उसी में ईश्वर को देखता हूं तो तुम इस वाक्य को क्या कहोगी।"

एडिथ—"सोचना होगा…"

देवी—"यह वाक्य मेरा नहीं; परम ईसाई टालस्टाय का है। अगर यह तुम भी मानती हो तो उस अर्थ में मैं ईसाई पहले से ही हूं, समझ लो। फिर और ईसाई बनने की क्या जरूरत है ?"

एडिथ चुप हो गयी। इस तरह की बातचीत से देवी को वह धर्मांतर के लिए राजी नहीं कर सकती, यह देखकर एक दिन बूढ़े पीटर ने देवी को चर्च ले जाने की बात की। वहां छोटामोटा काम दिलाने की बात की। ऐसे सब आश्रयहीन लोगों के लिए सबसे बड़ा आश्रय स्थान 'चर्च' नामक

संस्था में हैं, यह भी बताया पर देवी ने नौकरी भी ले ली पर वह ईसाई नहीं बना।

देवी सोचता रहा—नाम, स्थान, जाति-पाँति, धर्म, देश, भाषा यह सब मनुष्य के साथ कितने और कहां तक जुड़े रहते हैं?

उसने नामांतर किया।

उसने स्थानांतर किया।

परन्तु जाति-पाँति, धर्म के संस्कार उसके साथ कितनी गहराई से जुड़े हैं, जैसे उसकी त्वचा का वर्ण; जैसे उसके बालों का घुंघराला होना; जैसे उसकी आंखों का नीलापन; जैसे उसकी कई आदतें—चलने की, बोलने की···

उससे कोई मैट्रिक का सर्टीफिकेट मांगता तो वह बताता वह बांगला देश से भागकर आया हुआ हिन्दू रेफ्यूजी है। केरल में बंगाली कम थे। उसका यह मुखौटा उस पर बराबर बना रहा।

कुछ महीनों तक देवी ने वहां चर्च में नौकरी की। कुछ पैसे बचाये, और एक दिन उसने सोचा कि यहां रहना ठीक नहीं।

इसका कारण हुआ। खाड़ी के देशों से यहां केरल के समुद्र के किनारे पर कई लोग 'स्मगलिंग' का व्यवसाय करते थे। सोना और हीरे-जवाहरात और पता नहीं क्या-क्या लाते थे। उनके चक्कर में वह आ गया। और उनके दल का एक सदस्य बन गया। इस नाते उसे बैंक में काम करना पड़ा। वहां से उसका तबादला गोआ हो गया। ईसाइयों से उसकी बढ़ती हुई मैत्री और मेल-जोल ने उसे बहुत फायदा पहुंचाया। वह दिन के समय देवी सेन बैंक का कर्मचारी था। और रात के समय वह स्मगलरों का दिया हुआ नाम मिस्टर 'के' था।

एक ही व्यक्ति में कितने व्यक्ति छिपे रहते हैं? अरविंद मलहोत्रा को उसके माता-पिता और बचपन के मित्र और दिल्ली के लोग भूले नहीं होंगे। पर वह सबको भुला चुका है। देवी सेन को केरल के समुद्र किनारे के उस छोटे-से गांव के पादरी, पादरी की लड़की एंडिथ, और चर्च के पियानो सिखाने वाले, और डार्मिटरी के लोग और बैंक के मैनेजर और उस दिन पिकनिक पर गये थे, तब मिले रंगीन तबीयत मछुआरे—सब भूल

चुके होंगे। वह उन्हें भुलाने की कोशिश में है कि यह तीसरी भूमिका उसके सामने आ गई। उसमें गुप्तता होने से वह बहुत सावधानी और सतर्कता से मिस्टर 'के' से अपना कोई संबंध नहीं है (सिवा जबानी आदेश और पालन के) यह जानता है। इसीलिए वह जान-बूझकर गोआ की बीचों पर बीटनिक और हिप्पियों के अड्डों में जाता है। पर उनके साथ पीने का बहाना करके नहीं पीता; चूंकि कहीं अधिक पी जाने पर उसके मन के भीतर का चोर कहीं बाहर न निकल पड़े। उसकी जबान से कुछ न निकल जाये, इसलिए वह यथासंभव मित्र नहीं जुटाता। वह जानता है, जीवन में बेहद अकेला है। और अकेलापन दुखदायी चीज है। पर और दूसरा उपाय भी कहां है? अकेलेपन में ही आदमी अपना सही पता तलाशता रहता है।

वह इसीलिए नौजवान होकर किसी के प्रेम में नहीं पड़ा। न वह किसी राजनैतिक प्रतिबद्धता में फंसना चाहता है। उसका विशुद्ध लक्ष्य है, इस क्षण सिर्फ पैसा कमाना। और वह अब किसी भी साधन से, किसी भी प्रकार से, किसी भी मार्ग से पैसा कमाना चाहता है। सब ऐसा कर रहे हैं, वह क्यों न करें?

एक-दो वर्षों के अंदर-अंदर देवी सेन के कमरे में कई इंपोर्टेड चीजों का अंबार लग गया। ऐसे में एक दिन एक अजीब घटना घटित हुई।

## 3

एक दिन वह शाम को पंजिम में एक होटल में बैठा था कि दूर से एक पहचाना हुआ-सा आदमी पास आता दिखाई दिया। पहले तो उसने अपना चेहरा मेनू-कार्ड की ओट में छिपाया, पर मुसीबत की मार, वह आदमी ठीक उसके सामने वाली कुर्सी पर आन बैठा।

उसी ने बोलना शुरू किया—"मेरा नाम प्रशांत मलहोत्रा है, और मैं दिल्ली से आया हूं।"

देवी ने कहा—"ठीक है। आप मुझसे क्या चाहते हैं ?"

"आप जानते नहीं, मेरा भाई खो चुका है। तीन बरसों से उसका पता नहीं चलता। हमारे माता-पिता परेशान हैं। इस खोये हुए बेटे को पाने के लिए उन्होंने कितने विज्ञापन दिये। रेडियो पर संदेश दिये। झाड़-फूंक भी करवाई। ओझा-ज्योतिषियों को भी दिखाया। कोई पता नहीं चलता।"

कुतूहल से देवी सुनता रहा। 'हूं, हूं' कहता रहा। जब प्रशांत की पूरी कहानी पूरी हो गई तब देवी बोला—"क्या और कुछ आपको कहना है ? माफ कीजिये, मुझे एक जरूरी काम है, मैं चलूंगा।"

उसकी बात से और पता नहीं किस अज्ञात कारण से प्रशांत के मन में यह शंका बस गई कि जरूर यह अरविंद ही होगा, जो देवी सेन बनकर यहां छिपा हुआ है। पर इस बात का पक्का सबूत तो कोई था नहीं। प्रशांत ने बैंक में जाकर देवी के मित्रों से—जो कि बहुत थोड़े थे—खोजने की कोशिश की कि वह कहां रहता है, कहां-कहां जाता है। उसकी रुचियां क्या हैं ? क्या उसकी कोई स्त्री-मित्र है ? वह बीच-बीच में नौकरी से गायब हो जाया करता था, इतना ही उसे पता लगा। वह कहां जाता है, क्या करता है—यह सब जानना प्रशांत के लिए आवश्यक हो गया। इसके लिए प्रशांत ने यह सोचा कि उसे भी देशांतर करना होगा। ऐसे सीधे-सीधे तो कुछ भी ठीक से पता नहीं चलेगा।

प्रशांत कुछ दिनों के लिए पणजी (पंजिम) से चला गया।

देवी ने सोचा कि चलो, छुट्टी की सांस ली जाये। यह जो मेरे ही भाई मेरे ऊपर जासूसी कर रहे थे, उससे निजात तो पाई।

पर यह खयाल सिर्फ खयाल ही रहा। क्योंकि एक बार संदेह का बीज जो पड़ जाता है, वह सहसा मिट नहीं जाता। अभिज्ञा मनुष्य की छाया की तरह पीछा करती रहती है।

देवी सेन इस समय एक बहुत बड़े स्मगलर के चक्कर में था, जिसका नाम गुप्त रखने के लिए उसे 'एच० आर०' कहते थे। वह एकदम विला-

यती ढंग से रहता था। और उसकी बोलचाल से पता ही नहीं चलता था कि वह हरीराम, या हरसेन राठोड़, या हरदेवसिंह रारेवाला, या हवीवुर रहमान, या हेनरी रॉबिन है। हो सकता है वह हशीश या हेरॉइन का 'रिटेलर' होने से उसने यह नाम लिया हो। पर उसकी कहानी बहुत कुछ 'कंगाल से करोड़पति' वाली थी। उसके कुछ विदेशी संपर्क थे और पैसा उसके लिए कोई चीज नहीं थी। वह हवाई जहाज से ही घूमता था। आज काठमांडू तो कल काबुल तो परसों कुवैत। स्विटजरलैंड और सैन फ्रांसिस्को भी चक्कर लगाता था और हांगकांग और हेनोलुलू के भी, बैंकाक और सिंगापुर के भी।

अब एक दिलचस्प बातचीत सुनिये। इससे कहीं भी पता नहीं चल सकता कि कोई भी आदमी, कोई भी स्मगलिंग या 'असामाजिक' अपराध कहीं कर रहा हो। 'एच० आर०' की खूबी यह थी कि सदा उसके साथ एक नई महिला (जो अपने आपको सुंदरी समझती थी, या सुंदरी बनने का यत्न करती थी) अवश्य होती थी।

पंजिम के एक अज्ञात कोने में कम प्रकाश वाले होटल के कोने में दूसरी बोतल खुलने के बाद, यह संवाद शुरू होता है। इसमें केवल तीन समभागी हैं 'एच० आर०', मिस डिसूजा और देवी सेन—जिसका इस समय नाम बालावलकर है।

एच० आर०—"तो तुम्हारी रवलनाथ की जात्रा के बारे में क्या राय है?"

मिस डिसूजा—"ये 'जात्रा' क्या होता है, मिस्टर बालावलकर?"

बालावलकर—"पूर्णिमा की रात को सज-धजकर सब औरतें निकलती हैं। आधी रात तक गाना-नाच चलता है। फिर एक डंडे का जुलूस निकलता है। जो उठाता है, उसके शरीर में कुछ अज्ञात शक्ति आ जाती है। उस समय लोग उससे प्रश्न पूछते हैं। जो जवाब मिल जाता है, सच निकलता है।"

मिस डिसूजा—"हम क्रिश्चियन लोग को जाने में कोई 'आबजेक्शन' (आपत्ति) तो नही!"

बालावलकर—"सब तरह के लोग वहां पहुंचते हैं। सब जात के, सब

धर्मों के। वह तो बड़ा भारी कार्नीवाल, फेस्टीवल (त्यौहार) है। गरीब, अमीर सब पहुंचते हैं। मैं तो हर साल जाता रहता हूं।" (यह उसने झूठ बोला था, क्योंकि उसे यहा आये हुए ही एक साल नहीं बीता था)।

एच० आर०—"कुछ बिजनेस भी वहां होता है।"

वालावलकर—"धर्म में क्या बिजनेस, बॉस?"

एच० आर०—"धर्म आजकल एक बिजनेस हो गया है।"

वालावलकर—(हंसकर) "इसीलिए बिजनेसवाले धर्म की बड़ी-बड़ी बातें करते हैं।"

इतने मे मिस डिसूज़ा एक बड़े खान-मालिक को आते हुए देखती है और उसे हाथ के इशारे से बुलाती है।

परिचय कराया जाता है। सेठ मफतलाल हैं—दीव-दमन में आपका बड़ा ब्योपार है। कई 'माइन्स' के मालिक हैं।

एच० आर० (अतिरिक्त रुचि लेकर)—"ओ, आई सी। कुछ हम आपकी सेवा कर सकते हैं? (ताली से बैरा को बुलाकर) आपके लिए एक 'बड़ा पैग'।"

सेठजी—"नही, नही, हम इसका सेवन नही करते हैं।"

एच० आर०—"सॉरी। आप क्या पियेंगे? फ्रूट-जूस या डबल सेवन?"

सेठजी—"मुझे नीबू पानी चलेगा..."

एच० आर०—"सोडा उसमे मिक्स करें? या न करें?"

मिस डिसूज़ा—"आपको रवलसाथ की जात्रा के बारे मे कुछ मालूम है?"

सेठजी—"हा, हा, मेरी बड़ी बेटी का ब्याह ही नही हो रहा था। उसे हिस्टीरिया के दौरे आते है। हम उसे ले गये थे। ऊपा अच्छी हो गई।"

एच० आर०—"क्या उसकी शादी तो हो गई?"

सेठजी—"नही तो...।"

एच० आर०—"ये अपने दोस्त वालावलकर हैं, ये अभी शादीशुदा नही हैं। इनसे क्यो नही उसे मिलवा देते हैं?"

सेठजी की आंखें चमक उठीं। उन्होंने झट से होटल की कुर्सी छोड़कर बाहर खड़ी अपनी कार के ड्राइवर को कहा—"फौरन जाओ और ऊषा को ले आओ घर से।"

एच० आर०—"आप क्या करने गये थे?"

सेठजी—"बेटी को बुला लेता हूं।"

एच० आर०—"ओ, इतनी अधीरता? इस समय आप देख रहे हैं। हम सब जरा 'चढ़े हुए' हैं। ('हाई-अप' हैं)।"

अब ऊषा आए तब तक कुछ बातचीत चलती रही। सेठजी ने पूछा एच० आर० से—"आपके ये दोस्त क्या करते हैं? उनका नाम क्या है?"

"बालावलकर नाम है। गोवा के सारस्वत हैं···।"

"हमारी बेटी तो मछली खाती नहीं। आपके घर में तो मछली खाते होंगे।"

बालावलकर की ओर से एच० आर०—"ये तो एकदम यौरपीयन ढंग से रहते हैं। बड़े बैंक में हैं। बड़े ओहदे पर। विदेश के दौरे करते रहते हैं। हमारे बिजनेस में आप ही की बड़ी मदद है।"

"अच्छा, अच्छा," सेठजी बोले, "मगर फिर तो आपको दान-दहेज की भी बड़ी मांग होगी। हम तो ठहरे गरीब आदमी···"

एच० आर० ने ठहाका लगाया—"साल की पचास लाख आमदनी अगर गरीबी कहलाती है, तो ऐसी गरीबी हटाना आसान है। देश में हैं ही कितने करोड़पती, लखपती?"

बालावलकर चुपचाप सुन रहा था। रहा नहीं गया। पूछा—"लड़की पढ़ी-लिखी कितनी है?"

"बी० ए० में थी, तभी से हिस्टीरिया लग गया। पता नहीं क्यों, कैसे?"

इतने में ड्राइवर ने भीतर आकर सूचना दी कि ऊषा आ गई है। क्यों पापा ने इतनी जल्दी में बुलाया है, उसकी समझ में नहीं आ रहा है।

सेठजी ने कहा—"भीतर भेज दो।"

मंदिर में कथावाचक बोल रहे थे। भावुक जनता सुन रही थी।

"महाभारत, प्रजागरपर्व, उद्योगपर्व से विदुर ने कहा हुआ केशिनी का आख्यान यों है :

धृतराष्ट्र—"हे महाबुद्धिवान् विदुर, तू अत्यंत विचित्र भाषण कर रहा है। वह सुनते हुए मुझे संतोष नहीं होता। इसलिए और वचन सुना।"

विदुर—"हे विभो, सब तीर्थों में स्नान और सब प्राणियों से समता यह दोनों तुल्य फल देने वाले हैं। या यों कहें कि इन दोनों में समता ही प्रधान है। इसलिए हे राजा, तू इन कुमारों में, कौरवों और पांडवों में, समदृष्टि रख। इससे इस लोक में परम कीर्ति होकर मरण के बाद तुझे स्वर्ग प्राप्त होगा। हे नरश्रेष्ठ, जब तक मनुष्य की पुण्यकीर्ति इस लोक में प्रसिद्ध होती है, तभी तक वह स्वर्गलोक में मान्य होता है।"

इस विषय में बहुत पहले केशिनी के लिए विरोचन का सुधन्वा से संवाद हुआ था। वह पुरातन इतिहास प्रसिद्ध है। हे राजा, 'केशिनी' नामक एक अद्वितीय रूपवती राजकन्या थी। उसे उत्तम पति चाहिए था। इसलिए उसने स्वयंवर रचाया। वहां विरोचन नामक एक दैत्य आया। तब केशिनी ने उस दैत्येन्द्र से कहा—

"हे विरोचन, ब्राह्मण श्रेष्ठ है या दानव श्रेष्ठ है? मेरे मत से ब्राह्मण ही श्रेष्ठ है, क्योंकि ऐसा न होता तो सुधन्वा ब्राह्मण तेरे साथ एक आसन पर कैसे बैठा होता?"

विरोचन ने कहा—"हम कश्यप प्रजापति की प्रजा हैं, इसलिए श्रेष्ठ हैं। यह सब लोग हमारे हैं। हमारे आगे देव और ब्राह्मण सब नीचे हैं!"

केशिनी—"हे विरोचन, रुको! तुम इस स्वयंवर मंडप में ही बैठो। कल सवेरे सुधन्वा ब्राह्मण आने वाला है। उस समय तुम दोनों एक जगह आ जाना, तब मैं तुम दोनों में श्रेष्ठ कौन है, इसका निर्णय

चलूंगी।"

विरोचन ने कहा, "ठीक है"। और दूसरे दिन सुधन्वा और विरोचन दोनों एक जगह आ गये। ब्राह्मण पास आते देखकर केशिनी उठ खड़ी हुई। उसने आसन-पाद्यादिक अर्पण करके उसका सम्मान किया। तब विरोचन ने ब्राह्मण से प्रार्थना करी—कि "इस सुवर्ण सिंहासन पर मेरे पास आकर बैठो।"

यह सुनकर सुधन्वा ने कहा—"हे प्रह्लाद पुत्र, तुम्हारे इस सुवर्णासन को हाथ से स्पर्श कर मैं आदर व्यक्त करता हूं, पर तुम्हारे साथ एक आसन पर मैं कभी नहीं बैठूंगा।"

उस पर विरोचन ने सुधन्वा ब्राह्मण का उपहास किया और कहा—"हे सुधन्वा, मेरे साथ इस सुवर्ण-आसन पर बैठने की पात्रता तुझमें नहीं है। मेरे आसन से कनिष्ठ काष्ठासन या वेत्रासन तुम्हारे लिए ठीक होगा।"

सुधन्वा ने कहा—"हे दानव, पिता-पुत्र, दो विप्र, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध-वैश्य या दो शूद्र एक आसन पर बैठ सकते हैं। उनके अलावा और किसी को परस्पर आधे आसन पर बैठने का अधिकार नहीं है। जब मैं उच्च आसन पर बैठता था तब तुम्हारा पिता प्रह्लाद नीचे बैठकर मेरी सेवा करता था। तब तू बालक था। अपने घर में सुख से बढ़े हुए तुझे इस सभा का शिष्टाचार क्या मालूम होगा ? तू कुछ नहीं जानता।"

विरोचन—"हम दोनों में श्रेष्ठ कौन ?" हम इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए मैं अपना समस्त सुवर्ण, धेनु, अश्व और असुरों का सब वित्त दांव पर लगाता हूं। हे ब्राह्मण, हम विशेषज्ञों से यह प्रश्न पूछें।"

सुधन्वा—"हे विरोचन, सुवर्ण, गौएं, घोड़े सब तुम अपने पास रखो। हम अपने प्राणों को दांव पर लगाकर ज्ञाताओं से पूछें।"

विरोचन—"ठीक है। प्राणों की बाजी लगाकर हम किसके पास जायें ? क्योंकि देव और मानव उनके सामने मैं कभी भी नहीं जाऊंगा।"

सुधन्वा—"प्राणों की बाजी लगाकर हम तुम्हारे पिता प्रह्लाद के पास ही जायें। फिर तो ठीक है ? तुम्हारा पिता प्रह्लाद पुत्र के हित के लिए कभी भी असत्य भाषण नहीं करेगा।"

विदुर ने आगे कहा कि—"हे धृतराष्ट्र, प्राणों की बाजी लगाये दोनों क्रोध में प्रह्लाद के पास जा पहुँचे। उन्हें देखकर प्रह्लाद ने मन में सोचा—इन दोनों का जन्म-जन्म का वैर है, इसलिए दोनों एक साथ घूमते हुए कभी दिखाई नहीं देंगे। ऐसा होते हुए आज दोनों एक ही मार्ग से, एक साथ यहां क्यों आ रहे हैं? दोनों सांपों की तरह क्रुद्ध हैं। इसलिए पहले मैं विरोचन से प्रश्न करता हूं—"वत्स विरोचन, आज तक मैंने तुम दोनों को कभी एक साथ नहीं देखा। ऐसा होते हुए तुम आज एक साथ कैसे घूम रहे हो? पुत्र, तेरी इस सुधन्वा ब्राह्मण से मैत्री है क्या?"

विरोचन—"हे तात, इस सुधन्वा से मैंने मैत्री नहीं की। परंतु हम दोनों ने प्राणों की बाजी लगाई है और इस प्रश्न का निर्णय प्राप्त करने तुम्हारे पास आये हैं। मैं तुम्हें सत्य पूछ रहा हूं, इसलिए तुम असत्य मत बताओ।"

प्रह्लाद—"हे ब्राह्मण, आप मेरे लिए पूज्य हो, अतः प्रथम मेरे इस मधुपर्क को स्वीकार कीजिये।"

ऐसा कहकर उसने अपने सेवकों से कहा—"पहले इस सुधन्वा ब्राह्मण के लिए मधुपर्क और शुभ्रवर्ण पुष्ट गौ जल्दी ले आओ।"

यह सुनकर सुधन्वा ने कहा—"हे प्रह्लाद, मार्ग में हमने तब मधुपर्क ग्रहण किया ही है। अब पहले हम प्रश्न का निर्णय करें, उसी में सब मधुपर्क मुझे मिल जायेगा। मैं जो प्रश्न पूछ रहा हूं इसका सत्य और निश्चित उत्तर दो—ब्राह्मण श्रेष्ठ या विरोचन श्रेष्ठ? यह हमारे विवाद का विषय है।"

प्रह्लाद—"हे विप्रर्षि, विरोचन मेरा अकेला बेटा है और तू साक्षात् ब्राह्मण मेरे सामने है। ऐसे समय तुम दोनों के वाद का निर्णय हम कैसे करें? हे भगवान, तुम पूज्य हो। यदि तुम्हारे विरोध में मैं कुछ बोलूंगा तो ब्रह्मद्वेष का दोष मुझे लगेगा, और विरोचन मेरा पुत्र होने से उसके विरुद्ध निर्णय देने में पुत्रघात का दोष मुझे लगेगा।"

सुधन्वा—"पुत्र को गाय या दूसरा प्रिय धन दीजिये, परंतु हे बुद्धिमान, हारे विवाद में आप सत्य वचन ही बोलिये, यही उचित है।"

करूंगी।"

विरोचन ने कहा, "ठीक है"। और दूसरे दिन सुधन्वा और विरोचन दोनों एक जगह आ गये। ब्राह्मण पास आते देखकर केशिनी उठ खड़ी हुई। उसने आसन-पाद्यादिक अर्पण करके उसका सम्मान किया। तब विरोचन ने ब्राह्मण से प्रार्थना करी—कि "इस सुवर्ण सिंहासन पर मेरे पास आकर बैठो।"

यह सुनकर सुधन्वा ने कहा—"हे प्रह्लाद पुत्र, तुम्हारे इस सुवर्णासन को हाथ से स्पर्श कर मैं आदर व्यक्त करता हूँ, पर तुम्हारे साथ एक आसन पर मैं कभी नहीं बैठूंगा।"

उस पर विरोचन ने सुधन्वा ब्राह्मण का उपहास किया और कहा—"हे सुधन्वा, मेरे साथ इस सुवर्ण-आसन पर बैठने की पात्रता तुझमें नहीं है। मेरे आसन से कनिष्ठ काष्ठासन या वेत्रासन तुम्हारे लिए ठीक होगा।"

सुधन्वा ने कहा—"हे दानव, पिता-पुत्र, दो विप्र, दो क्षत्रिय, दो वृद्ध-वैश्य या दो शूद्र एक आसन पर बैठ सकते हैं। उनके अलावा और किसी को परस्पर आधे आसन पर बैठने का अधिकार नहीं है। जब मैं उच्च आसन पर बैठता था तब तुम्हारा पिता प्रह्लाद नीचे बैठकर मेरी सेवा करता था। तब तू बालक था। अपने घर में सुख से बड़े हुए तुझे इस सभा का शिष्टाचार क्या मालूम होगा ? तू कुछ नहीं जानता।"

विरोचन—"हम दोनों में श्रेष्ठ कौन ?" हम इस प्रश्न का निर्णय करने के लिए मैं अपना समस्त सुवर्ण, धेनु, अश्व और असुरों का सब वित्त दांव पर लगाता हूँ। हे ब्राह्मण, हम विशेषज्ञों से यह प्रश्न पूछें।"

सुधन्वा—"हे विरोचन, सुवर्ण, गौएं, घोड़े सब तुम अपने पास रखो। हम अपने प्राणों को दांव पर लगाकर ज्ञाताओं से पूछें।"

विरोचन—"ठीक है। प्राणों की बाजी लगाकर हम किसके पास जायें ? क्योंकि देव और मानव उनके सामने मैं कभी भी नहीं जाऊंगा।"

सुधन्वा—"प्राणों की बाजी लगाकर हम तुम्हारे पिता प्रह्लाद के पास ही जायें। फिर तो ठीक है ? तुम्हारा पिता प्रह्लाद पुत्र के हित के लिए कभी भी असत्य भाषण नहीं करेगा।"

विदुर ने आगे कहा कि—"हे धृतराष्ट्र, प्राणों की बाजी लगाये दोनों क्रोध में प्रह्लाद के पास जा पहुंचे। उन्हें देखकर प्रह्लाद ने मन में सोचा—इन दोनों का जन्म-जन्म का वैर है, इसलिए दोनों एक साथ घूमते हुए कभी दिखाई नहीं देंगे। ऐसा होते हुए आज दोनों एक ही मार्ग से, एक साथ यहां क्यों आ रहे हैं? दोनों सांपों की तरह क्रुद्ध हैं। इसलिए पहले मैं विरोचन से प्रश्न करता हूं—"वत्स विरोचन, आज तक मैंने तुम दोनों को कभी एक साथ नहीं देखा। ऐसा होते हुए तुम आज एक साथ कैसे घूम रहे हो? पुत्र, तेरी इस सुधन्वा ब्राह्मण से मैत्री है क्या?"

विरोचन—"हे तात, इस सुधन्वा से मैंने मैत्री नहीं की। परंतु हम दोनों ने प्राणों की बाजी लगाई है और इस प्रश्न का निर्णय प्राप्त करने तुम्हारे पास आये हैं। मैं तुम्हें सत्य पूछ रहा हूं, इसलिए तुम असत्य मत बताओ।"

प्रह्लाद—"हे ब्राह्मण, आप मेरे लिए पूज्य हो, अतः प्रथम मेरे इस मधुपर्क को स्वीकार कीजिये!"

ऐसा कहकर उसने अपने सेवकों से कहा—"पहले इस सुधन्वा ब्राह्मण के लिए मधुपर्क और शुभ्रवर्ण पुष्प भी जल्दी ले आओ।"

यह सुनकर सुधन्वा ने कहा—"हे प्रह्लाद, मार्ग में हमने तब मधुपर्क ग्रहण किया ही है। अब पहले हम प्रश्न का निर्णय करें, उसी में सब मधुपर्क मुझे मिल जायेगा। मैं जो प्रश्न पूछ रहा हूं इसका सत्य और निश्चित उत्तर दो—ब्राह्मण श्रेष्ठ या विरोचन श्रेष्ठ? यह हमारे विवाद का विषय है।"

प्रह्लाद—"हे विप्रर्षि, विरोचन मेरा अकेला बेटा है और तू साक्षात् ब्राह्मण मेरे सामने है। ऐसे समय तुम दोनों के वाद का निर्णय हम कैसे करें? हे भगवान, तुम पूज्य हो। यदि तुम्हारे विरोध में मैं कुछ बोलूंगा तो ब्रह्मद्वेष का दोष मुझे लगेगा, और विरोचन मेरा पुत्र होने से उसके विरुद्ध निर्णय देने से पुत्रघात का दोष मुझे लगेगा।"

सुधन्वा—"पुत्र को गाय या दूसरा प्रिय धन दीजिये, परंतु हे बुद्धिमान, हारे विवाद में आप सत्य वचन ही बोलिये, यही उचित है।"

प्रह्लाद ने पूछा—"हे ब्राह्मण, वाद में सत्य या असत्य कोई भी निर्णय न देने वाले को या अन्याय से निर्णय देनेवाले को कौन-सा दुःख प्राप्त होता है, यह मुझे बता।"

सुधन्वा ने कहा—"पति अपना सान्निध्य छोड़कर सपत्नी के पास जाने पर स्त्री को उस रात को कैसे दुःख होता है; या द्यूत में पराजित पुरुष जैसे खेद से रात बिताता है; या दिन-भर भार वहन कर थके हुए मनुष्य का सारा बदन दुखता है, इसलिए रात-भर जैसा क्लेश सहन करता है; उस नाटक की दुःखमय रात अन्याय का निर्णय करने वाले पुरुष को सहनी पड़ती है। जिसे मन में आश्रय नहीं मिलता, उसे क्षुधार्त होकर द्वार के बाहर खड़े रहना पड़ता है और जो असंख्य शत्रुओं से घिरा कष्टापन्न है ऐसे पुरुष जैसा दुःख असत्य गवाह देनेवाले को सहना पडता है। भूमि के लिए असत्य बोलने वाले के सर्वस्व का नाश होता है। इसलिए हे प्रह्लाद, भूमितुल्य केशिनी के लिए तू असत्य भाषण न कर!"

प्रह्लाद ने निर्णय दिया कि—"हे विरोचन, इस ब्राह्मण का पिता अंगिरा मुझसे श्रेष्ठ है; यह सुधन्वा तुमसे वरिष्ठ है और इसकी माता तुम्हारी माता से प्रशस्यतर है। इसलिए इस विप्र ने तुझे जीता है। वही तुम्हारे प्राणों का स्वामी है, यह मेरा निर्णय है।"

पुत्र को ऐसा कहकर प्रह्लाद ने सुधन्वा की ओर मुड़कर कहा--"हे ब्रह्मन न्याय से तुम्हें अर्पित किया हुआ पुत्र विरोचन तुम मुझे वापिस दो, ऐसी मेरी प्रार्थना है।"

सुधन्वा ने कहा—"प्रह्लाद, चूंकि तुमने धर्म की बात की, मोह से तुम झूठ नहीं बोले, इसलिए तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हारे पुत्र के दुर्लभ प्राण मैं तुम्हें वापिस देता हूं और केशिनी राजकन्या के पैर हलदी से नहलाकर, मेरे सामने विरोचन से उसका विवाह तू करा दे। यह राज-कन्या इसी की भार्या बने।"

विदुर ने धृतराष्ट्र से कहा—"यह कहानी सुनाने का तात्पर्य इतना ही है कि भूमि के लिए असत्य भाषण मत करो। अरे, पुत्र के लिए झूठ बोल कर पुत्र और अमात्य दोनों के साथ अपना विनाश मत करो। पशु का पालन करने वाले गोपाल की तरह वेद हाथ में लाठी लेकर

मानव का रक्षण नही करते हैं। तो जिन्हें जिनका रक्षण काम है उन्हीं मनुष्यों को वे उस तरह की सुबुद्धि देते हैं।

"वेदशास्त्र कपटाचरण करनेवाले झूठे आदमी का पाप से रक्षण नही कर सकते। पंख फूटते ही जैसे पक्षी अपना घोंसला छोड़कर उड़ जाता है, वैसे ही वेद ऐसे धार्मिकों का अंतकाल मे त्याग करते हैं। यह सब दृष्टांत देकर मैं यही कहना चाहता हूं कि हे राजा, तुम्हारा दैव प्रतिकूल है और तुम्हारा अध्ययन निष्फल है।"

प्रवचन समाप्त हुआ। कथा-वाचक ने अपना पोथी-पत्रा संभाला। सब अपने-अपने घर जाने लगे। पर सेठजी और सेठानीजी थोड़ा पीछे रुके रहे। उन्हें पता था कि कथा-वाचक जी कुछ ज्योतिष भी जानते हैं, तो उनके चरणों मे दक्षिणा रखकर उन्होंने पूछना आरंभ किया :

"महाराज, हमारी एक चिन्ता है।"

"सो क्या है ?"

"हमारी बेटी विवाह योग्य है। पर उसका विवाह ही नही होता।"

"ऐसा क्यों है ?"

"हम कारण नही जानते।"

"हम बताते हैं। उसका प्रेम कहीं हो गया था। वह उसी के साथ विवाह करना चाहती थी। आपने मना कर दिया।"

"यह सच है।"

"फिर दोष उसका है या आपका ?"

सेठ-सेठानी थोड़ी देर चुप। अपना दोष स्वयं सहज कबूल करनेवाले दुनिया मे कितने कम व्यक्ति होते हैं।

"तो इसका प्रायश्चित्त-परिमार्जन भी आपको ही करना होगा।"

"सो कैसे ?"

"अब उसकी राय पूछकर ही आप विवाह करें। अपना भार उस पर न लादें। उसी से नुकसान होता है।"

"शादी-ब्याह जन्म-जन्म का संग-साथ है। इसलिए उसकी जौहरी से विवाह न करना ठीक नही। नई विलायत से डिग्रीधारी होने पर भी

उसके लिए बंगाल या दिल्ली या अन्य किसी भी प्रदेश में दहेज देकर भी, ऊंचा पढ़ा-लिखा वर मिलना मुश्किल हो गया है। ये सवेरे ही चले जायेंगे। तब तो एक रात हमारे पास समय है। उसी में हम वर के बारे में जान लें।"

कथावाचक सोचने लगे। उन्होंने पैंतरा बदला—"ग्रहशांति करानी होगी। आपके कुछ दुष्ट ग्रह जमा हो गये हैं!"

सेठ-सेठानी ने इस बात पर उनसे विदा ली। बेटी से बढ़कर उनका एक ही देवता है—पैसा! पैसे के लिए वे कुछ भी कर सकते थे। पैसा हो तो एक क्या अनेक वर प्राप्त कर लिए जा सकते हैं।

कथावाचक समझ गये। सेठजी जा रहे थे तो उनसे कहा—"पैसा तो ठीक है। पर यह खर्च जो आप करेंगे वह धर्म विधि के कारण में लगेगा। हमें पैसा जमा करके क्या करना है? हमारी तो कथावाचकी से काम चल जाता है। पर आप ध्यान रखें—लड़की पागल हो जाएगी। उसे बीच-बीच में बेहोशी के दौरे आते हैं। वे बढ़ जायेंगे। आप दुबारा शांत चित्त से सोच लें। राहु और शनि की कुदृष्टि है···।"

पर पैसा खर्च करने की बात सुनते ही सेठजी वहां कहां रुकने वाले थे।

# 5

ऊषा भीतर आई तो लजाती हुई। उसने आसमानी रंग की साड़ी पहन रखी थी और उसी रंग की गहरी शेड का ब्लाउज। लड़की सांवली थी पर नाक-नक्श तीखे थे। आखें बड़ी-बड़ी थीं। वहां बैठे लोगों को देखकर वह भांप गई कि यह वधू-परीक्षा का मामला है।

वह और सकुचाकर सेठजी के पास बैठ गई। धीमे से पूछा—"पापा, आपने इतनी देर रात गये, और यहां मुझे क्यों बुलाया? सब खैरियत

तो है ?"

सेठजी—"नहीं-नहीं•••।"

ऊषा—"मैं समझी आपका वही पीठ और कमर का दर्द फिर बढ़ गया होगा और डाक्टर को बुलाना हो तो मुझे बुलाकर कहना होगा। ड्राइवर से कहकर तो वैसा ही होता जैसे उस बार हुआ, वह खाली हाथ लौट आया था।"

एच० आर० समझ गया कि लड़की अपने बाप को बहुत चाहती और मानती है। उन्होंने ही शुरुआत की—"बी० ए० करने के बाद आगे पढ़ाई का विचार है।"

"हां।"

"अजी अपने देश में क्या रखा है ? एकदम आपका दाखिला अमेरिका की एक युनिवर्सिटी में करा देते हैं। अपने पहचान वाले यहां-वहां, दुनिया-भर में हैं।"

सेठजी—"यह तो ठीक है एन० आर०; पर वहां की पढ़ाई का खर्चा तो मेरे बस की बात नहीं।"

एच० आर०—"कौन कहता है कि आप खर्च करोगे। आप तो बेटी की शादी करा दो और जमाई और बेटी के दो हवाई टिकिट सीधे शिकागो के कटवा दो। बाकी हम सब देख लेंगे।"

"यह विचार तो उत्तम है। पर ऊषा की राय भी तो जान लेनी चाहिए। बेटी, विलायत जाओगी ?"

बेटी मौन ?

"बेटी, शादी करोगी ?"

बेटी मौन•••।

"बेटी, देख दूल्हा घर पर खुद चला आया है, सिर्फ तुम्हारी 'हां' कहने की बात है। बाकी तो सब एकदम हो जायेगा।"

बेटी मौन•••।

वालावलकर—"आप विवाह का मुहूर्त वगैरह नहीं देखते हैं ?"

सेठजी—"वह तो सेठानी को राजी करने के लिए सब 'लगीगो' करने ही पड़ें हैं।" उसकी आप परवा मत करो। जरा-सा पैसा ज्यादा

दिया कि सब ग्रह-नक्षत्र अनुकूल कराके जो चाहे वह महीना, हफ्ता, दिन, घटिका हम पैसे से तै करा सकते हैं। पुरोहित और मुहूर्त्त तो अपनी मुट्ठी में हैं।"

वालावलकर ने सबसे कहा—"अर्थस्य धर्मो दासः"

एच० आर० ने चुटकी ली—"क्या सोच रहे हो पार्टनर, यह सौदा अच्छा है। अगले महीने ही बैंक से छुट्टी ले लो। एकाध महीना शिकागो हो आओ।"

"एकाध महीना ?" वालावलकर ने पूछा।

"नहीं, नहीं। मेरे कहने का मतलब—पढ़ाई-लिखाई इनको वहां की 'सूट' करती है या नहीं, देख लेना। फिर तो तुम्हारे लिए भी कुछ काम हम वहीं जुगाड़ लेंगे।"

इस सारे संवाद में ऊषा चुपचाप बैठी सुन रही थी। जैसे उसका अपना कोई मन नहीं है। बाप ने धकेला, वर के पास फेंक दिया। वर ने फेंका, पुत्र के पास रहने लगी—स्त्री को कोई स्वतंत्रता नहीं। वह मानो निरी गेंद है। ऊषा ने कहा—"पापा, अभी कोई निश्चय न कीजिये। बाद में सोचेंगे।"

"क्यों ? तुम भी लड़के को—वर को—कुछ पूछना चाहती हो तो पूछ लो।"

ऊषा ने एकदम दस सवाल पूछे।

"आपकी पढ़ाई कहां तक हुई ?"

"यही बी० कॉम।"

"क्या करते हैं ?"

"बैंक में हूं।"

"क्या वेतन है ?"

"यही अट्ठारह सौ माहवार।"

"घर में कितने लोग हैं ?"

"कोई नहीं है। अकेला हूं।"

"यहां नहीं, और कहीं तो होंगे…"

"नहीं, मेरा कोई सगा-संबंधी नहीं है। मैं अनाथ ही पैदा हुआ। अब

तक ऐसा ही संघर्ष करता रहा हूं—बिना किसी संबंधी के।"

"जो लोग ऐसे अकेले रहने के आदी होते हैं, उनका स्वभाव बहुत आत्म-केंद्रित हो जाता है।"

"यह सबके बारे में सच नहीं होता।"

"आपकी हॉबी क्या है ?"

"संगीत।"

"कौन-सा ?"

"आपको कौन-सा प्रिय है ?"

"मैं भारतीय ललित संगीत पसंद करती हूं।"

"मुझे पाश्चात्य क्लासिकल संगीत पसंद है।" बालावलकर ने यों ही टाल दिया। उसने सोचा कि ऐसा कहना ही अधिक सुरक्षित उपाय है।

रूपा चुप हो गयी।

"और कुछ, पूछना है ?"

"नहीं।"

"आप चाहें तो पूछें।"

"नहीं।"

यों पंजिम के एक होटल में बालावलकर का विवाह तै हो गया।

परंतु प्रशांत चुप नहीं था। वह बराबर खोज-खबर टोहता रहा। बैंक से शादी के नाम पर वह छुट्टी और कर्ज भी ले रहा है। यहां तक उसे पता था। अब लड़की कौन-सी है और क्या करती है यह जानना उसके लिए आवश्यक हो गया था। पर कोई सुराग ही हाथ नहीं लग रहा था।

## 6

शिकागो जाने के लिए पासपोर्ट-साइज फोटो जहां बालावलकर ने खिंच-

वाये, वहां से प्रशांत को पता लग गया।

वच्चू हिंदुस्तान से भागने के चक्कर में है, यह वात प्रशांत के मन में पक्की घर कर गई। अब क्या किया जाये? प्रशांत और उसके भाई की शक्लें वहुत कुछ मिलती-जुलती थी। स्टूडियो से वह फोटो लेकर प्रशांत ने दाढ़ी वढ़ानी शुरू की और दो मास के वाद उसने भी उसी स्टूडियो से वैसी ही फोटो खिचवा ली। वह भी पासपोर्ट दफ्तर पहुंचा। यह तस्वीर दिखा-कर उसने पता लगवाया कि अपना भाई जा कहां रहा है। तो पासपोर्ट पर 'यू० एस० ए०' (संयुक्त राष्ट्र अमेरिका) देखा। वहां जाकर यह वैंक का मामूली क्लर्क करेगा क्या?

प्रशांत ने यहां तक उनकी यात्रा रुकवाने की कोशिश की कि पास-पोर्ट भी उसने वनवा लिया। दो पासपोर्टों के फोटो के साम्य के सहारे देवी की टोह ली पर जव यात्रा संपन्न हो रही थी, तव पता लगा कि देवी सेन की जगह वहां देवी सेन था ही नहीं, वह तो सदानंद वालावलकर था प्रशांत के सारे प्रयत्न व्यर्थ हुए।

और एक दिन ऊपा और सदानंद 'पैन-ऍम' से वंवई से न्यूयार्क उड़ान भरकर चले गये। हवाई अड्डे पर पहुंचाने सेठजी, सेठानी, 'एन० आर०' और उसके अंतर्राष्ट्रीय व्यापार-संघ के सदस्यगण आदि वहुत लोग उपस्थित थे। 'एन-आर०' ने व्यवस्था की थी कि जहाज़ सीधे न्यूयार्क न जाये—रास्ते में जहां-जहां उसका व्यापार था, वहां भी रुकता-रुकता जाये। अदन, वैरूत, रोम, फ्रांकफुर्त। ज़ूरिख, लंदन होता हुआ वह न्यूयार्क-शिकागो जानेवाले थे। नव-दंपति और विलायत-दर्शन का शौक। कारण तो पर्याप्त था।

सदानंद के जिम्मे और भी गुप्त काम थे, जो केवल वह या 'एन० आर०' जानते थे। ऊषा खुश थी कि चलो शादी भी हुई और विदेश में आगे पढ़ाई भी करने को मिलेगी। ऐसी इस यात्रा का एक चरण था वैरूत में दो दिन रुकना।

अभी तक ऊषा को सदानंद के स्वभाव का पता नहीं लगा था। वह वहुत ही चुपचाप रहता।

सदानंद को भी ऊषा के मन की गहराई का अन्दाज़ नहीं लग सका

था। दोनों का विवाह तो करा दिया गया था। पर दोनों एक-दूसरे के प्रति अजनबी थीं। उन दोनों में एक तरह की दूरी और संभ्रम बराबर बना हुआ था। इसलिए कहीं भी जाते, तो बातें बहुत ऊपरी-ऊपरी, उड़ती-उड़ती होती थीं। जैसे बेरुत में :

सदानंद—"यहां अदन की तरह फ्रीपोर्ट है।"

ऊषा—"मुझे तो कुछ खरीदना नहीं। न मेरे पास इतना फॉरेन एक्सचेंज ही है।"

सदानंद—"पैसे की परवाह तुम क्यों करती हो। मेरे मित्र ने सब जगह व्यवस्था कर दी है। पैसा मिल जायेगा।"

ऊषा—"पर मैं जानती नहीं कि अमेरिका के लिए यहां से कुछ ले जाना ठीक होगा? अमेरिका में तो सब चीजें मिल जाती हैं।"

फिर दोनों चुप।

सदानंद—"देखती हो यह है तो देश मुस्लिम, पर यहां सबसे ज्यादा ईसाई होने से सबका कल्चर एकदम पश्चिमी हो गया है। भाषा भी अंग्रेजी और फ्रेंच ज्यादा लोग जानते हैं।"

ऊषा—"हां।"

सदानंद—"यहां ये लोग धर्म और भाषा को एक नहीं मानते।"

ऊषा—"हूं।"

सदानंद—"तुम क्या सोचती हो?"

ऊषा—"ऐसे गंभीर विषयों पर मैंने ज्यादा सोचा ही नहीं।"

फिर बातचीत खत्म।

कभी ऊषा ने विषय छेड़ा—"देख रहे हो समुद्र किनारा कितना सुंदर है।"

सदानंद—"हां।"

ऊषा—"वह बालू और समुद्र के किनारे के पेड़ और ऊंचे-ऊंचे मकान।"

सदानंद—"देख रहा हूं।"

ऊषा—इन्हें देखकर तुम्हें क्या भारत की याद नहीं आती?"

सदानंद—"आती है।"

ऊषा—"वहां की तुलना में ये सब शहर कितने ज्यादा साफ-सुथरे हैं। लोग कितने खुले दिल से समुद्र में नहाते हैं। जीवन का आनंद लेते हैं···।"

सदानंद—"दोनों जगह की आबो-हवा अलग है। लोगों के स्वभाव अलग हैं।"

ऊषा—"सो तो है ही, पर···।"

सदानंद—"पर क्या ?"

ऊषा—"तुम मुझसे ठीक तरह से बोलते क्यों नहीं हो ?"

सदानंद—"बोल तो रहा हूं।"

ऊषा—"यह भी कोई बोलना है। 'हां', 'हूं', बस।"

सदानंद—"ऊषा, तुम भी यही करती हो।"

ऊषा—"शायद मैं मूर्ख हूं। और हम दोनों में एक-सी रुचि के विषय नहीं हैं।"

सदानंद—"ऐसा तुम्हारा भ्रम है। मैं तो सब विषयों में रुचि लेता हूं।"

ऊषा—"पर तुम अपने पूर्व-जीवन के बारे में कुछ नहीं कहते। क्या तुम मुझसे कुछ छिपाना चाहते हो ?"

सदानंद—"शादी हो जाने के बाद एक-दूसरे का क्या छिपाव हो सकता है ?"

ऊषा—"मन छिपा रह सकता है। उसमें कई तरह के एक के भीतर एक दराज रहते हैं। मन एक गुफा है, जिसकी गहराई का पता ही नहीं लगता।"

सदानंद—"तो उस चक्कर में पड़ो ही क्यों ?"

ऊषा—(गंभीर होकर) "मैं नहीं चाहती कि मेरा पति मुझसे दुराव करे।"

सदानंद—"यह दुराव नहीं, ऊषा, मेरा स्वभाव है। मैं बहुत कम बोलता हूं।"

फिर दोनों चुप।

यात्रा पर यही हाल रहा। क्या इटली में, क्या जर्मनी में, क्या स्विट-जरलैंड में। सब जगह सदानंद को पता नहीं क्यों बैंकों में कुछ काम रहता

था। व्यवसाय का चक्कर ऐसा ही होता है। होटल में ऊपा को छोड़कर सदानंद चला जाता। कहता, 'एन० आर०' के बहुत-से काम अधूरे हैं।

फ्रांकफुर्त में एक बार रात को एक नाइट-क्लब जैसी जगह में सदानंद ऊपा को ले गया। ऊपा के संस्कार ही दूसरे थे। उसे वह सब स्त्रियों का निर्वस्त्र होना और यों उत्तेजक नाच करना अच्छा नहीं लगा। वह कहने लगी—"छोड़ो यह सब, होटल वापिस चलें।" सदानंद को बड़े शहरों में रहकर ये सब तमाशे देखने की आदत थी। पर ऊपा के लिए सब नया-नया था। उसे बहुत बुरा लगा कि पुरुष और स्त्रियां भी खूब पी रहे हैं और कोई सुन्दरी उन सबका सार्वजनिक अंग-प्रदर्शन करके मनोरंजन कर रही है।

धर्म तो अर्थ का दास बना ही था। यहां अर्थ भी काम का दास बन रहा है। सारे 'पुरुषार्थ' मानो 'स्त्रियार्थ' हुए जा रहे हैं। इस पर दोनों में खासी बहस हो गयी—

ऊपा—"स्त्री इन लोगों के लिए मानो केवल शरीर है।"

सदानंद—"ऐसी बात नहीं है। यूरोप में, जर्मनी में, रूस में, इंग्लैंड में सब जगह बड़ी-बड़ी विदुषी महिलाएं हुई हैं। बड़ी-बड़ी वीरांगनाएं हुई हैं। लेखिकाएं हुई हैं। कलाकार हुई हैं। इसलिए यह कहना कि सारे पश्चिम वालों के लिए स्त्री-मात्र एक 'वासना की देह' है। ठीक नहीं है।"

ऊपा—"फिर ऐसा सब स्त्री-रूप का व्यापार क्यों ? पुस्तकों के कवर देखिये, सिनेमा देखिये, विज्ञापन देखिये…।"

सदानंद—"अगर चित्र मात्र से किसी पुस्तक की बिक्री बढ़ती हो तो वे लोग क्यों न वह करें ? आल इज फेअर इन बिजनेस एंड वार।"

ऊपा—"यह सरासर स्त्रियों के साथ अन्याय है।"

बात यहीं रुक जाती। दोनों जैसे दो चट्टानों के आमने-सामने खड़े हैं—बीच में समुद्र दहाड़ें मार रहा है।

# 7

अब आगे सारा यात्रा वर्णन देने से क्या लाभ ? सदानंद की शिकागो की, अमेरिका प्रवास की डायरी ही हाथ लग गई है, उसके कुछ अंश देता हूं। कितने ही नाम बदले हों, जगहें और नौकरियां बदली हों, संस्कार तो भारतीय के इतने जल्दी बदलते नहीं, सो उस डायरी के अंश यहां देता हूं, जिससे सदानंद के मन की उथल-पुथल का कुछ चित्र मिल सके।

"कल रात 31 दिसंबर को पुराना साल खत्म हुआ, नया साल लगा। रात के 12 बजे बड़ा जोशो-जश्न मनाया गया। न्यूयार्क में टाइम स्क्वेयर में सुनता हूं। लोग पागलों की तरह जमा हो जाते हैं। टस से मस होने को जगह तिल भर नहीं रहती। ज्यादह पीकर रश ड्राइविंग के माने कई कार-अपघात और दुर्घटनाओं में मृत्यु-संख्या सौ-दो सौ तो सहज एक बड़े शहर का एक रात का हिसाब होता है।

इस उम्मीद से कि कुछ बड़ा नया देखने को मिलेगा। मैं दक्षिण भारतीय विद्यार्थी सूर्या और उनकी पत्नी लक्ष्मी का निमंत्रण पाकर रात को उनके घर पहुंचा। दो कोरिया के विद्यार्थी, शांता और लक्ष्मी नारायण ग्यारह बजे रात की राह देखते हुए वक्त काट रहे थे। गप-शप चल रही थी। महिलाओं ने काफी पी। हम सब लोग बीअर के कैनों पर जुटे थे।

कोरियन लोगों से पता चला कि 'त्सारंग हमीदा' उनकी भाषा में 'मैं तुमसे प्यार करता (ती) हूं का पर्यायवाची शब्द है। एक विद्यार्थी का नाम था किम, दूसरे का 'जय-हो-चाय।' चाय ने कहा "बौद्ध धर्म बड़ी कठिन भाषा में लिखा जाता है, ईसाई धर्म बहुत आसान भाषा में लिखा जाता है। उनकी किताबें ज्यादा बिकती हैं। यही दो धर्म कोरिया में हैं।"

मैंने पूछा—"दक्षिण कोरिया पर अमेरिकी जीवन पद्धति का असर कहां तक हुआ है ?"

चाय बोले—"खूब, काफी !"

मैंने पूछा—"कौन से बड़े लेखक हैं?"

"एक नाम लेना मुश्किल है।" कहकर टाल गये।

और विद्यार्थियों की टोली आई। सब लोग सड़क पर जा पहुंचे। खूब मदमाते थे। आज होटल, विशेषतः जलपान गृह (पब) देर रात तक खुले रहने वाले थे। सिनेमाघर के आगे बड़ा भीड़-भड़क्का था।

ऊषा यह देखकर बहुत चकरायी कि आज की रात सबको सबके साथ मनमानी करने की छूट है। हमारी होली से भी ज्यादह। तरुणियां किलकारियां मार रही थीं। कुछ चीख रही थीं। कुछ तरुण जबर्दस्ती कर रहे थे। फोटो खींचे जा रहे थे। काफी कैमरे क्लिक कर रहे थे।

भारतीय छात्र अधिक पीकर नाचने लगे। बराबर बारह बजे कागज की रंग-बिरंगी टोपियां और पीं पीं बाजे—आ गये। ज्यूक बाक्स से और रेडियो से जोर-जोर से गाने चल ही रहे थे। लोग झूम-झूमकर गाने लगे।

शास्त्री ने कहा—"शिकागो में बहुत अच्छे क्लब हैं। एक गोरे क्लब में भारतीयों को भी जाने देते हैं। मैंने अब नाच सीख लिया है!"

मैं मन ही मन कल्पना करने लगा कि यह मोटा गंजे सिर का कुरूप बौना भारतीय ऊंची तगड़ी अमेरिकी बालाओं के साथ कैसे नाचता होगा? शायद वे ही इसे 'नचाती' होंगी।

मुझे उत्सुकता हुई तो पूछ बैठा—"आप भारत में थे, तब यह सब पश्चिमी नाच-गान जानते थे, सारा खान-पान करते थे क्या?"

वे बोले—"बिल्कुल नहीं। यहीं आकर पहली बार बीअर चखी। मगर अब मेरा बीस पाउण्ड वजन बढ़ गया है। मैं आपको मेरी 'गर्ल-फ्रेंड' से मिलवाऊंगा..." इत्यादि।

पता नहीं क्यों मेरे मन में बड़ी जुगुप्सा बढ़ गई। एक अच्छी सजी-सजाई दुकान की कांच की दीवार के भीतर सजी-सजाई अर्द्ध-नग्न नारी आकृतियां खड़ी थीं। बाहर एक पियक्कड़ ने जोर से कै कर दी थी, उसके अवशेष गंधाते पड़े थे—मांस के छिछड़े, टूटी बोतलें और क्या-क्या? मोटरें बदहवास दौड़ रही थीं, सब नियम अनुशासन की शृंखलाएं तोड़ते हुए।

क्रमशः

मैं देर रात घर लौटा। ऊषा तो वैसे ही थक गई थी। सो गई। मुझे बड़ी रात देर तक पढ़ने का अभ्यास था। मैंने मार्गरिट पार्टन की पुस्तक 'दि लीफ एंड दि फ्लेम' उठा ली। न्यूयार्क हेरेल्ड ट्रिब्यून की प्रतिनिधि पत्रकार पार्टन भारत में पांच बरस तक रह चुकी थी। बहुत ही मनोरंजक पुस्तक लगी। शुरू में ही उसने लिख दिया था—"मुझसे कहा गया था कि भारत में जाकर भारत की जनता से एकरूप बनो। मैं इसे मूर्खता समझती हूं। साड़ी पहन लेने से या थोड़ा-सा गांव में घूम आने से कहीं भारतीय बना जाता है? मैं अमेरिकन हूं, और सदा रहूंगी। इसमें मुझे कोई अपराध की भावना नहीं जान पड़ती। मैं भारतीय नहीं बन सकती।"

लेकिन हमारे सब युवक (और कुछ युवतियां भी) पूरी तरह अमरीकी बनने पर तुले हैं और अमादा हैं। क्या वे अपनी त्वचा का या आंखों की पुतलियों का, या बालों का रंग बदल सकेंगे?

इस विदेश में आत्मा का रूप भी त्वचा के रंग से निर्णीत किया जाता है! हे ईशू!! शायद यहां लोग लापता आत्मा की खोज में लगे हैं।

डायरी आगे चलती रही। कुछ और हिस्से:

"सतारा के रहने वाले पाटील मिले। इस्लामपुर में उनकी खेती थी। प्रेम-विवाह किया, घर के लोगों से लड़कर अंतर्जातीय विवाह किया। पत्नी छह माह बाद मर गई। तब से विरक्त, यहां चले आये। दो साल से साइंस में रिसर्च करते हैं। यहां 'टाइलेट-सफाई' (पाखाने और बाथ-रूम साफ करना) का एक घंटे में दो डालर के हिसाब से काम किया। कनाडा से जो माल आता है, उसमें लकड़ी ढोने का काम करते हैं। अपनी कमाई पर खेती में रिसर्च कर रहे हैं। बीच में भारत गये थे। एक मंत्री उनके रिश्तेदार थे। बोले—"यहां क्यों आते हो? यहां तुम्हें क्या मिलेगा? वहीं, अमेरिका में रहो! आराम से रहो।"

कह रहे थे—"कल ही पी. एच. डी. का एक अमेरिकी विद्यार्थी मिला। वह भारत से लौटकर आया है। कलकत्ता में वेश्यायें कितनी

सस्ती है, इसका रसपूर्ण वर्णन कर रहा था। सुना, उन पर थीसिस लिखने वह पुनः भारत जायेगा।"

पाटिल बोले—"मुझे लगा कि मानो सौ-सौ जूते मुझे चौक में सरे-आम किसी ने मारे हों! हमारा सीता-सावित्रियों का, सती पूजा का देश···।"

गोआ के गुंडे मिल गये। उनके साथ ही फिलिपिन्स देश की शिक्षा-शास्त्र में रिसर्च करनेवाली एक स्त्री मिली—वह शेक्सपीयर की नायिकाओं पर अंग्रेजी साहित्य में प्रबंध लिख चुकी थी। उसका पति अमेरिकी लेखक-पत्रकार है। पर उसे अमेरिकियों की भग-दड़, झक-झक पसंद नहीं। वह कहने लगी कि उसकी माँ चीनी और बाप इस्पाहानी थे। लेकिन वह यूरेशियन होकर भी उसका दृष्टिकोण 'पूर्व' का है। उसने कहा—पूर्व और पश्चिम का आत्मिक मेल असंभव है। अमेरिकी पुरुष से विवाह करके बारह बरस बाद भी यही उस महिला की उपलब्धि है!

गुंडे से गोआ की बात चली। उन्होंने टिपिकल गोवाई मध्यवित्तीय भारतीय का दृष्टिकोण बताया। वे सारी गलती नेहरू और उनके परिवार की बताते हैं।

मैंने कहा—आजकल भारतीयों में एक नये तरह का भाग्यवाद आ गया है। पहले जब कोई कठिनाई आती थी तो भगवान पर उसकी जिम्मेदारी डाल देते थे। अब जितनी भी बुराई हो—बलाय-बलाय 'नेहरूवंश' पर! अच्छाई के लिए हम खुद हैं ही बुराई-बुराई सब सरकार की।

चलने लगे तो मैंने एक फलसफाना वाक्य छोड़ दिया—"मानवी संबंधों में दिक्कत यह है कि जिस किसी चीज की शुरुआत होती है, उसका अन्त भी होता ही है। सबसे अच्छा यह है कि जिसका आदि हो न अन्त हो।"

फिलिपिनो साहित्य प्रेमिका थी। बोली—"न आदि का पता है, न अन्त का, हम सब 'मीनह्वाइल' से ही सतोष कर लेते हैं।"

मैंने कहा—"यही तो गीता का 'व्यक्तमध्यानि भारत' है। मध्य भी

हम पूरा कहां जानते हैं। केवल जितना व्यक्त है उतना ही जानते हैं।'

अमरीकी हंसा और बोला—'हर आदमी यहां 'टीवी' के प्रोग्राम के बीच में आता है। वह पूरा होने से पहले ही उठकर चल देता है...।"

मैं पुराने अखबार पढ़ रहा था। विदेशी लोग भारत और चीन की आर्थिक तुलना करते हैं। 'निउ स्टेट्समैन' में द्युमांत ने 'भारत के भूखे करोड़ों' लेख में बहुत पहले लिखा था—"एफ.ए.ओ.के एस.के.दे ने द्युमांत से पूछा था—'तुम भारत में प्रजातंत्र चाहते हो या आर्थिक प्रगति ?"

क्या इन दोनों में विरोध है ?

एक रेडियो में काम करने वाली लेखिका से मिलना हुआ। उसने बताया कि हत्या-खून-बलात्कार और अपराध आदि पर उपन्यास लिखने से सभी ज्यादह कमा लेते हों, ऐसी बात नहीं है। सात दिनों में पचास हजार शब्दों की एक कहानी उसने लिखी है, सो अब तक अप्रकाशित पड़ी है। उसने बताया कि अमुक लेखक इतना अधिक लिखता है कि जैसे रद्दी के तौल से बेचता हो। विपुल लेखन में भूसा ज्यादह दाने कम होते हैं। जैसे कहावत है कि 'क्या काबुल में गधे नहीं होते ?' वैसे ही' क्या अमेरिका में रद्दी लेखक नहीं होते हैं ?"

मैंने इधर भारत से आई एक पत्रिका में लम्बी कहानी, धैर्यपूर्वक पढ़ी। एकदम बेकार। कहीं-कहीं कुछ वाक्य अच्छे बन गये हैं। पर कुल मिलाकर प्रभाव एक ऐसे रंगफलक (पैलेट) का है जिसमें सब रंग गड्डमड्ड होकर मटियाले, धुंधले हो गये हों। मार्गारेट पार्टन ने लिखा है—हिंदू जन काले और सफेद में सोच ही नहीं सकता। वह सदा भूरे (ग्रे) में सोचता है।"

इस तरह से सदानंद की डायरी के अंश कितने ही दिये जा सकते थे। पर वह केवल यही दिखाते हैं कि सदानंद वहां ज्यादह दिन नहीं रह पाया। ऊषा को तो एक कालेज में पढ़ने की अनुमति मिल गई थी। छोटा-मोटा

काम भी मिल गया था। ऊषा को छोड़कर सदानंद पुनः यूरोप के रास्ते होते हुए अकेला भारत लौट आया।

कहीं न कहीं गहरे में उसके मन में यह पीड़ा थी कि वह बिना जड़ों का, निर्मूल, विच्छिन्न, एक तरह की अमरबेल का-सा जीवन बिता रहा है। फिर उसने यूरोप में गत महायुद्ध के बाद रेफ्यूजियों के जहां तांते लग गये, और जिन-जिन देशों में विनाश के बाद पुनर्निर्माण का कार्य भी बड़े पैमाने पर हुआ, वह देखा, और उसके मन में यह एकाकीपन उसे और भी सालने लगा।

## 8

ऐसी दशा में वह वापिस बंबई लौट आया। दिल्ली वह जाना नहीं चाहता था। उसे डर था कि कोई पुराना पहचान वाला ही न मिल जाये। 'एन. आर.' से उसका गुप्त संबंध बराबर चल रहा था, इसलिए उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी। वह समस्या उसे सताती नहीं थी। पर ऊषा भी अमेरिका में छूट गई। नौकरी भी उसने बदल डाली।

सदानंद अब एक मनो-वैज्ञानिक डॉक्टर बनकर बंबई के उपनगर में रहने लगा। तरह-तरह के लोग पागल और ऐसे ही रोगियों से उसका पाला पड़ा। पुनर्जन्म के कारण पूर्व स्मृतियों के संस्कारों से पीड़ित कुछ लोग थे। ऐसी ही एक 'केस' में डॉक्टर सदानंद (अमेरिका से वह एक डिग्री कहीं से जुगाड़ लाया था) और उस नये परिवार के व्यक्तियों की बातचीत यहां दी जा रही है।

"आइये, आइये, डॉक्टर साहब आपकी बड़ी ख्याति सुनी।"

"ख्याति-व्याति क्या? यों ही, कुछ सेवा कर लेते हैं।"

"बैठिये।"

"हूं।"

"शीला, जरा डॉक्टर साहब के लिए चाय, काफी, शर्बत लाना—क्या लेंगे आप ?"

"नहीं-नहीं, कुछ भी नहीं। अभी पीकर आ रहा हूं। तकल्लुफ रहने दीजिये।"

"नहीं साहब, मेरी पत्नी बड़ी अच्छी चाय बनाती है। इसी बहाने मुझे भी थोड़ी मिल जाएगी।"

"क्यों आपकी चाय पर भी श्रीमतीजी का कंट्रोल है क्या ?"

"नहीं, वे चाय की विरोधिनी है। उनके विचार से इस पेय से दिमाग में खुश्की बढ़ती है। नींद नहीं आती। भूख मंद हो जाती है, आदि ···आदि।"

"कुछ हद तक उनकी बातें सही हैं...।"

"आप सिगरेट पियेंगे ?"

"जी नहीं, शुक्रिया।"

"इसके बारे में भी यही सब कहा जाता रहा है। जान पड़ता है कि अपने बुजुर्ग आनंद मात्र के विरोधी थे। मनःशुद्धि के नाम पर और निर्व्यसनता के नाम पर कई कुंठित पुरुष और स्त्रियों का क्रोध जागृत होता था।"

"मैं पुरातन मतवाला व्यक्ति नहीं हूं। पर व्यसनों पर मनुष्य का नियंत्रण या अधिकार रहे तो उत्तम। अन्यथा वह 'दास' बन जायेगा...।"

इतने में शीला चाय की ट्रे आदि लेकर आई। मुख्य विषय पर चर्चा शुरू हुई। अब प्रोफेसर ने कहना शुरू किया—"शीला को वहम हो गया है, कि वह पूर्वजन्म में एक राजकन्या थी, और उसने एक भिक्षुक का अपमान कर दिया, जिसने उसे शाप दे दिया। इसीसे वह बार-बार उसके सपने में आता है और तंग करता है।"

शीला सिहरने लगी। सोफे पर बैठकर आंखें मूंदकर वह अपनी कहानी सुनाने लगी—"एक सफेद काली-चितकबरी दाढ़ी वाला, भगवी कफनी पहने, क्रोधी मुद्रा में, लाल-लाल आंखें दिखानेवाला साधु चीख रहा है—तुम कभी कोई चीज भूल नहीं सकोगी। बचपन से जीवन में

हुई हर छोटी से छोटी बुरी बात बराबर याद आती रहेंगी। तुम इस जन्म में मर जाओगी, अल्प वयस में—पर अगले जन्म में भी तुम सुखी कभी नहीं रह सकोगी।...तुम किस बात पर घमंड कर रही हो राज-कन्ये! यह रूप ज्यादा दिन नहीं टिकने वाला है; यह धन यह तो पानी का बुलबुला है। यह प्रतीक्षा और राजमहल का मान, केवल सपना है। नहीं, नहीं, तुम कभी सुखी नहीं रहोगी...।"

बड़ी देर तक वह उस साधु की बात बार-बार दोहराती रही। बीच-बीच में भय से थर-थर कांपते हुए, वाणी अवरुद्ध हो जाती, कंठ-स्वर अश्रु-विगलित हो जाता। बड़ी देर बाद वह एकदम अचेत हो गई—निढाल होकर वह सोफे पर औंधी गिर पड़ी। पति ने उसे वहां से उठाकर शय्या पर लिटा दिया।

डॉ० सदानंद सोचने लगे कि इसका उपाय क्या हो?

शीला के पति से उसने पूछा—"इसका मन कहीं ऐसे अन्य मनोरंजक या दिल बहलाने वाली चीजों में अटकाना चाहिए कि वह यह सब दुःस्वप्न भूल जाये...।"

शीला के पति सुरेश ने कहा—"मैंने वह सब करके देखा है। मैं उसे कई फिल्में दिखाने ले गया। हम लोगों ने थियेटर देखे। हम छुट्टियों में पिकनिक पर गये। मैंने उसे कैमरा ला दिया कि वह फोटोग्राफी सीखे। घर में संगीत के टीचर लगा दिये। पर यह सब व्यर्थ सिद्ध हुआ जब दौरा आता है, वह पूर्ववत हो जाती है।"

डॉ० सदानंद गंभीर हो गया।

फिर प्रश्न किया—"वह साधु उससे क्या चाहता है?"

"वह उसके प्राण चाहता है। शीला के मन में यह बात पक्की बैठ गई कि वह जल्दी ही मर जायेगी—उसका दिल बहुत कमजोर हो गया है। वह रात में नींद में से चौंककर उठ जाती है। रात-रात-भर उसे नींद नहीं आती।"

डॉ० सदानंद ने कहा—"मैं इसका उपाय करूंगा।"

डॉ० सदानंद शीला और उसके पति से विदा लेकर अपने एक साधु मित्र के पास पहुंचे। साधु का इलाज साधु द्वारा ही हो सकता था।

यह साधु मित्र नाम का साधु था। वह जीवन में कई तरह के बुरे काम कर चुका था। शायद वह 'एन० आर०' की गैंग का एक सदस्य था। उस ढोंगी साधु का नाम था रग्घू। वह अब अपने आपको राघवानंद कहता था। एक छोटी-सी फर्म में बहुत कम तनख्वाह पर वह पहले काम करता था डेढ़ सौ रुपये माहवार पर। प्राइवेट परीक्षाएं देकर बी० ए० हो गया, वहीं उसे पैसे खाने का चस्का लग गया था। हर काम में कमीशन लेता था। धीरे-धीरे वह बढ़ता गया, सफल होता गया। जैसे को वैसे मिल ही जाते हैं।

उसकी किस्मत से एक बार शहर में एक नामी स्वामी जी आये, जिनकी शिष्य-शाखाएं अमेरिका और कैनाडा में थीं। उन्होंने इस चतुर और कुशाग्र बुद्धि के व्यक्ति को देखा। और उन्होंने एक चेला मूंड लिया। अब धीरे-धीरे इस साधुगिरी के कुछ टेकनिकल शब्द यह दुष्ट आदमी सीख गया—प्राणायाम, ध्यान, कुंडलिनी, शक्तिपात, नाम-योग इत्यादि और इसने भी अपनी आध्यात्मिक दुकानदारी शुरू कर दी। छोटी-सी जगह उसके पास थी। बाहर पटिया लगा दिया—स्वामी राघवानंद 'प्रणव-विशेषज्ञ'। जितनी रहस्यवादी शब्दावली का प्रयोग करो, उतना ही अच्छा! जनसाधारण तो मूर्ख होते ही हैं, उन्हें और मूर्ख बनाने वाला चाहिए। इस देश में यह बिना पूंजी का धंधा सबसे अच्छा चलता है।

सदानंद ने राघवानंद को सारा किस्सा सुनाया। राघवानंद ने पूछा —"शीला का पति सुरेश कैसा आदमी है। यानी उसके पास पैसा-वैसा कितना क्या है? कमीशन तगड़ा मिल रहा हो तो हम ही उस सपने वाले भिक्षुक का भौतिक प्रत्यक्ष रूप धारण कर लेते हैं।"

सदानंद ने कहा—"चलो उसके यहां बात कर लेंगे।"

शीला के घर पहुंचते ही साधु को देखकर वह चीख उठी—"अरे, वही बाबा आ गये!"

साधु ने दाढ़ी पर से हाथ फेरा और पूछा—"'वही' से क्या मतलब है?"

शीला—"सपने में उन्हें रोज मैं देखती हूं। वैसी ही भौंहें हैं। वैसी

ही चितकबरी दाढ़ी है। वह भगवी कफनी भी वैसी ही पहनते हैं। हाय, अब मैं क्या करूं।" वह सिहरने लगी।

साधु मुस्कराये। बोले—"बहुत अच्छा।"

शीला चुप। घर मे बैठे सब लोगों पर सकता। एक अजीब खौफ का आलम तारी हो गया। सुरेश भी चुपचाप सिगरेट पीता, नाखून कुतरता एक कोने मे बैठा रहा, नपुंसक की तरह।

साधु ने कमरे मे छाया मौन तोड़ा—"सब लोग यहां से बाहर चले जायें। सिर्फ मैं और सदानंद यहां रहेंगे। मुझे 'पेशंट' से कुछ एकान्त में ज़रूरी बातें करनी हैं। दरवाज़े खिड़की के बाहर कोई कान लगाकर न बैठे। बहुत बुरा होगा, यदि प्रेतात्माओं की इस बातचीत के बीच मे कोई मर्त्य आ गया हो। उसी समय वह मर जायेगा।"

अब सब मरने के डर से बाहर हो गये। कमरे में शीला, साधु रासवानंद और सदानंद बचे रहे। जो बातचीत शुरू हुई उसका ढंग तो ऊपर से कोई अर्थ नहीं लगता था। ऊट-पटांग और ऊलजलूल सी, निरर्थक और विसंगत बातें लगती थी। पर मनोविश्लेषण के जानकार, जो हर मानसिक असाधारणता का अर्थ लगा लेते हैं, उसमे एक गहरा सरोकार किसी किसी चीज से पायेंगे, जहा मन के भीतर कोई कुंठा की पुड़ी जमकर बैठ गई थी। मन सदा लापता चीज़ों की खोज मे लगा रहता है, तब तक चीज़ें घुलकर मिटती चली जाती हैं। साल्वादोर दाली की पिघलती हुई घड़ियों की तरह···एक हिमनदी मे आधे टूटे खंभों की तरह···

साधु ने कहा—"मत डरो बच्ची।"

"मैं बच्ची-बच्ची नहीं। मैं सयानी हो गयी हूं। मेरी मां मुझे क्यों पीटती है ? मैंने पापा को बाथरूम में नंगा नहाते देखा था ··।"

सदानंद—"तब तुम्हारी उम्र क्या थी ?"

"मेरी कोई उम्र नहीं। मैं आद्या शक्ति हूं। भैरवी हूं। मैं जन्म से नारी हूं—मृत्यु तक रहूंगी। मैं सती हूं। मैंने कोई पाप नहीं किया है।"

साधु—"तो तुमने उस भिक्षुक को दान क्यों नहीं दिया ?"

"वह असंभव चीज़ें मांगता था ?"

सदानंद—"कैसी असंभव ?"

"आकाश कुसुम गूलर का फूल, सोने का पहाड़, रेगिस्तान में फव्वारा, हमेशा जमा रहने वाला इंद्र धनुष।"

साधु—"तब बारिश हो रही थी ?"

"बिना बादल के बिजली, बिना आकाश के धूप—अधर में देवता नाच रहे थे...।"

सदानंद—"कौन से देवता ?"

"उनका चेहरा नहीं था।"

सदानंद—"फिर भी याद करने की कोशिश करो।"

"उनकी आंखें लाल थीं, पड़ौस के चाचा बैजनाथ जैसी। बचपन में उनसे बहुत डरती थी।"

साधु—"क्यों ?"

"वह खूब शराब पीकर धुत्त होकर आते। देर रात नशे में बीवी को खूब पीटते। छोटे-छोटे बच्चे चीखते—हमारी भाभी को मत मारो !"

सदानंद—"कोई मदद करने नहीं आता ?"

"घर में कोई नहीं था। पड़ौस की बुढ़िया आकर दरवाजा पीटती पर उसकी कौन सुनता ?"

साधु—"फिर क्या हुआ ?"

"मैं नहीं बताऊंगी राज-कन्या को पंख उग आये। हंस उसे उड़ाकर पहाड़ के पार किले में ले गया।"

सदानंद—"फिर क्या हुआ ?"

"वही दुष्ट साधु लौटकर आ गया। उसने राजकन्या की दोनों टांगे तोड़ डाली।"

सदानंद—"तो क्या हुआ ? दुनिया में कई लंगड़े हैं। विकलांग हैं। मजे में रहते हैं।"

"नहीं-नहीं वह मां बनना चाहती थी। वह मां नहीं बन सकी। उसकी ममता की डोर टूट गई।"

साधु—"राजकन्या बच्चा गोद ले लेती।"

सदानंद—"तुम अपने पति को चाहती हो ?"

"मैं उसके बिना रह नहीं सकती।"

सदानंद—"वह साधु तुमसे ब्याह करना चाहता था ?"

वह चीखी—और बेहोश हो गई।

सदानंद ने कहा,—"साधु राघवानंदजी, अब आप जायें। हम इसका कोई-न-कोई उपाय खोज निकालेंगे।"

## 9

शीला का और इतिहास जानने पर पता लगा कि उसे बच्चा नही हुआ था। कई बार बच्चा होनेवाला होता, पर जल्दी से गिर जाता। या तो उसके शरीर मे कोई दोष था, या मन मे। डॉक्टरों को दिखाया कि कोई शरीर में कमी तो नही थी। पति-पत्नी वैसे स्वस्थ्य थे। कोई भी समस्या न थी। रोग मानसिक ही था।

सदानंद ने अमेरिका मे जाकर दुनिया भर की अवान्तर बातें सीख ली थी—उनसे वह लोगो पर रौब गालिब कर सकता था। अच्छी अंग्रेजी बोल लेता था। अच्छे नफासत से कपडे पहनता था। एक नूर आदमी, दस नूर कपड़ा। और उसमें सौ नूर बातचीत का लफड़ा।

पर भीतर-भीतर डॉ० सदानद को एकान्त बहुत खलता था। अकेला होने पर उसका मन उसको खाने लगता था। बार-बार उसे अपने परिवार की याद आती। सौतेली ही क्यो न हो मा कैसी है, कहा है? और सब रिश्तेदार? आंधी आते ही पक्षी भाग नही जाते हैं? दरिद्र का भी ऐसा ही होता है। फिर पेड पर पत्ते आये कि पक्षी चहचहाने आ जुटते हैं। पैसे वालो के पास लोग हर तरह जमा हो जाते है। जहां होंगे कण, वहीं जुटेंगे जन। (मसतील शितें, तेथे जमतील मुतें)।

उसे लगा कि इस तरह से अकेले रहने की जिंदगी कोई जिंदगी नहीं। इसलिए उसने विचार किया कि विज्ञापन देकर विवाह के योग्य

पत्नी या वधू ढूंढ़ी जाये। वह जानता था कि ऐसे विवाह करना खतरों से खाली नहीं। पर विज्ञापन का परिणाम यह हुआ कि पचासों प्रार्थना-पत्र आ गये। उनमें से छांटना भी मुश्किल था। कई लोगों को बुलाया। एक एक से बात की एक भी नहीं जंची।

जीवन इसी तरह दिशाहीन भटकता चल रहा था कि एक दिन उसके चिकित्सालय में एक युवती आई। सहमी-सहमी, डरी-डरी सी। उसने आकर बताया कि वह शीला की सहेली है, और उसके बारे में बहुत कुछ बताना चाहती है।

सदानंद ने उसे एकांत कमरे में ले जाकर पूछना चाहा। पर वह कहने लगी—"मैं यह सब क्यों बता दूं? मुझे इसके ऐवज में क्या मिलेगा?"

सदानंद ने कहा—"जैसी जानकारी तुम दोगी उस पर उसके दाम निर्भर होंगे। मैं पहले से कैसे बता दूं? मानो मैं तुम्हें कई हजार रुपये कहूं और तुम एकदम कुछ न बताओ, तो?"

वह जोर से हंसने लगी। बोली—"आप भी अजीब आदमी हैं। गुप्त बातें जानने को इतने उत्सुक हैं? पर उसके भी पैसे चाहते हैं? मोल-तोल करते हैं। आप बेकार आदमी हैं।" थोड़ी देर चुप रहकर वह बोली—"आप गाना सुनोगे?"

सदानंद ने कहा—"क्यों नहीं?"

निदा फाजली की गजल थी जो उसने गाई:

"जब से करीब हो के चले जिंदगी से हम
खुद अपने आईने को लगे अजनबी से हम
कुछ दूर चलके रास्ते सब पर एक से लगे
मिलने गये किसी से मिल आये किसी से हम
अच्छे-बुरे के फर्क ने बस्ती उजाड़ दी
मजबूर हो के मिलने लगे हर किसी से हम
शाइस्ता महफ़िलों की फिज़ाओं में जहर था
जिंदा बचे हैं जेहन की आवारगी से हम

जंगल मे दूर तक कोई दुश्मन न कोई दोस्त
मानूस हो चले हैं मगर बंबई से हम"

उसकी आवाज बहुत ही अच्छी थी। उसमें लोच भी था। दर्द भी था।

थोड़ी देर दोनों चुप बैठे रहे।

सदानंद ने कहा—"तुम्हारा नाम क्या है?"

"लीला।"

यह नाम शीला से मिलता-जुलता था। यह मेरे पास क्या केवल शीला के बारे में बताने आई है, या इसका कुछ और गहरा इरादा है? डॉ० सदानंद थोड़ा मन-मन में सकुच गया।

ऊपर से उसने कहा—"आपका गाने का ढंग बहुत ही अच्छा है। क्या आपने गाना कहीं सीखा है?"

"हां"

"कहां?"

"मुन्नीजान के कोठे पर।"

"आप और मुन्नीजान का कोठा।" सदानंद को विश्वास नहीं हुआ।

"क्यों, उसमें क्या बुराई है?"

"अच्छाई-बुराई नहीं। पर ऐसी बात कोई लड़की एकदम एक अपरिचित को बताती नहीं है।"

वह हंसने लगी। उससे साफ था कि लीला इस मनोचिकित्सक की ही मनोचिकित्सा करने आई है।

हम सब कितने भोले हैं। हम समझते हैं कि हम सब होशियार हैं। और अपने को औरों की निगाह से छिपा रहे हैं। पर असल में कोई किसी से छिपा हुआ नहीं है। सबको सबका पता है। सिर्फ हम एक विराट् धोखा-धड़ी के शिकार हैं। हम सब आत्म-वंचक हैं। अपने-आपको औरों से बेहतर मानते रहते हैं।

"तो लीला, क्या मुन्नीजान के यहां जाना तुमने स्वेच्छा से चुना? वहां तुम क्यों गईं?"

"यह सब मैं क्यों बताऊं? पहले यह बताइये कि आप इसके बदले

में मुझे क्या देंगे ?"

"क्या ज्ञान की कोई कीमत है ?"

"आप अपना मनोरोगों का ज्ञान वेचते रहते हैं। क्या यह पाप नहीं है ?"

"पाप छिपाना है। वैसे अच्छे-बुरे कर्मों का फल तो आदमी यहीं, इसी जन्म में, दूसरे ही क्षण पा लेता है।"

"क्या आप इस बारे में इतने आश्वस्त हैं ?"

डॉ० सदानंद ने एक किताब अलमारी से उठाई और लीला को उसने एक भदत्तशूर का श्लोक सुनाया:

पापं समाचरति वीतघृणो जघन्यः
प्राप्यापदं सघृण एव तु मध्यबुद्धिः।
प्राणात्ययेऽपि न तु साधुजनः सुवृत्तं
वेलां समुद्र इव लंघयितुं समर्थः॥

और अर्थ भी बताया—"निर्दय नीच पुरुष सदा पापाचार में ही प्रवृत्त रहता है, मध्यम श्रेणी का व्यक्ति आपत्ति पड़ने पर कुछ सहृदय हो जाता है किन्तु साधु पुरुष—जिस प्रकार समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता उसी प्रकार प्राण-संकट आने पर भी अपना सदाचार नहीं छोड़ते।"

लीला ने सीधे प्रश्न किया—"क्या आप अपने को साधु पुरुष समझते हैं ? आप वह निर्दय नीच पुरुष हैं जो पापी और पुण्यवान के बीच में झूल रहे हैं। देखो सदानंद, मुझसे कुछ छिपाओ मत, मैं ऊषा से सब जान चुकी हूं वह यहां भारत में आ गई है। और तुम पर तलाक़ का मुकद्दमा करने जा रही है।"

अब डॉ० सदानंद की पहली फिक्र यह हुई कि इस स्थिति से कैसे भागा जाये ? वह 'एच० आर०' की सहायता लेने गया। उसने एक कोड नंबर बताया हुआ था। उसपर उसने फोन किया। और उधर से जानकार आदमी ने सूचना दी। अभी दो दिन 'बॉस' बाहर है। फिर 'कांटैक्ट' करना।

दो दिन सदानंद के बहुत बुरे बीते। वह यह सोचता था कि ऊषा उधर अमरीका में मजे में है। और अब उसकी जान संकट में है। कोई

चिंता नहीं है। न आगे पाग, न पीछे पगहा। वह मुक्ताचारी है। जो चाहे सो करेगा। उसे कोई नहीं जानता कि उसका भूत क्या है।

यही मनुष्य की दूसरी बड़ी गहरी आत्मप्रवंचना है। कोई भी मनुष्य अपने 'भूत' से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकता है, न हुआ है। जब तक शरीर है, उसके निर्माण करनेवाले पिता (निश्चित न हो तो भी) माता है। उसमें परंपरित संस्कारों के बीज हैं। वही तो दूसरे शब्दों में पूर्वजन्म का दाग है। सदानंद यथा नाम जो सदा आनंद में रहना चाहता है। पुराने सब दुःखों को भूलकर 'गुम-शुदा' बने रहने में उसे सुख है।

पर अपने-आप से कहां भागेगा?

उसके भीतर कुछ है जो उसे कुरेद-कुरेद कर, कोंच-कोंचकर जगाता, उकसाता, पहचानता रहा होता है—तू अरविंद मलहोत्रा है।

तू अरविंद मलहोत्रा है।

तू अरविंद मलहोत्रा है।

तू न देवी सेन है, न सदानंद बालावलकर, तू और कुछ बन···तू यहां से भाग जा···तुझे इस पृथ्वी पर कहीं चैन नहीं है, जब तक तेरा असली पता, असली आदमी लगा नहीं लेगा।

लेकिन क्या यहां से भाग जाना इतना आसान है? ठीक है, किराया दिया हुआ है। और कोई बंधन या चिंता नहीं है। पैसा भी पास में काफी है। लेकिन वह सर्वशक्तिमान, सबको ऊपर से भीतर-बाहर देखते रहने वाला ईश्वर नहीं—दादा 'एच० आर०' उसकी गिरफ्त से कैसे बचा जायेगा?

सदानंद ने सोचा कि इसके पहले कि ऊपा से जाकर सीला कुछ कहे और वह कोर्ट में मुकद्दमा दायर करे और वह समन्स उसके फ्लैट तक आयें, वह यहां से उसी तरह भाग निकले—दो जोड़ी कपड़े, स्लीपिंग बैग और बैंक अकाउंट कल पूरा खाली करा ले। कैश कितना साथ में रख सकता है। किसी दूसरे ही नाम से ट्रैवलेर्स चैक बनवा ले।

यह सब उसने दूसरे ही दिन किया। और रात की गाड़ी से वह पूरब चला गया। सीधे उड़ीसा में कटक जा पहुंचा। और एक होटल में अपना नाम महादेव शर्मा लिखवाकर रहने लगा। इसी नाम से उसने ट्रैवेलर्स

में मुझे क्या देंगे ?"

"क्या ज्ञान की कोई कीमत है ?"

"आप अपना मनोरोगों का ज्ञान बेचते रहते हैं। क्या यह पाप नहीं है ?"

"पाप छिपाना है। वैसे अच्छे-बुरे कर्मों का फल तो आदमी यहीं, इसी जन्म में, दूसरे ही क्षण पा लेता है।"

"क्या आप इस बारे में इतने आश्वस्त हैं ?"

डॉ० सदानंद ने एक किताब अलमारी से उठाई और लीला को उसने एक भदत्तशूर का श्लोक सुनाया :

पापं समाचरति वीतघृणो जघन्यः
प्राप्यापदं सघृण एव तु मध्यबुद्धिः।
प्राणात्ययेऽपि न तु साधुजनः सुवृत्तं
वेलां समुद्र इव लंघयितुं समर्थः॥

और अर्थ भी बताया—"निर्दय नीच पुरुष सदा पापाचार में ही प्रवृत्त रहता है, मध्यम श्रेणी का व्यक्ति आपत्ति पड़ने पर कुछ सहृदय हो जाता है किन्तु साधु पुरुष—जिस प्रकार समुद्र अपनी मर्यादा का उल्लंघन नहीं करता उसी प्रकार प्राण-संकट आने पर भी अपना सदाचार नहीं छोड़ते।"

लीला ने सीधे प्रश्न किया—"क्या आप अपने को साधु पुरुष समझते हैं ? आप वह निर्दय नीच पुरुष हैं जो पापी और पुण्यवान के बीच में झूल रहे हैं। देखो सदानंद, मुझसे कुछ छिपाओ मत, मैं ऊषा से सब जान चुकी हूं वह यहां भारत में आ गई है। और तुम पर तलाक़ का मुकद्दमा करने जा रही है।"

अब डॉ० सदानंद की पहली फिक्र यह हुई कि इस स्थिति से कैसे भागा जाये ? वह 'एच० आर०' की सहायता लेने गया। उसने एक कोड नंबर बताया हुआ था। उसपर उसने फोन किया। और उधर से जानकार आदमी ने सूचना दी। अभी दो दिन 'बॉस' बाहर है। फिर 'कांटैक्ट' करना।

दो दिन सदानंद के बहुत बुरे बीते। वह यह सोचता था कि ऊषा उधर अमरीका में मजे में है। और अब उसकी जान संकट में है। कोई

चिंता नहीं है। न आगे पाग, न पीछे पगहा। वह मुक्ताचारी है। जो चाहे सो करेगा। उसे कोई नहीं जानता कि उसका भूत क्या है।

यही मनुष्य की दूसरी बड़ी गहरी आत्मप्रवंचना है। कोई भी मनुष्य अपने 'भूत' से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकता है, न हुआ है। जब तक शरीर है, उसके निर्माण करनेवाले पिता (निश्चित न हो तो भी) माता है। उसमें परंपरित संस्कारों के बीज हैं। वही तो दूसरे शब्दों में पूर्वजन्म का दान है। सदानंद यथा नाम जो सदा आनंद में रहना चाहता है। पुराने सब दुःखों को भूलकर 'गुम-शुदा' बने रहने में उसे सुख है।

पर अपने-आप से कहां भागेगा?

उसके भीतर कुछ है जो उसे कुरेद-कुरेद कर, कोंच-कोंचकर जगाता, उकसाता, पहचानता रहा होता है—तू अरविंद मलहोत्रा है।

तू अरविंद मलहोत्रा है।

तू अरविंद मलहोत्रा है।

तू न देवी सेन है, न सदानंद वामावलकर, तू और कुछ बन···तू यहां से भाग जा···तुझे इस पृथ्वी पर कहीं चैन नहीं है, जब तक तेरा असली पता, असली आदमी लगा नहीं लेगा।

लेकिन क्या यहां से भाग जाना इतना आसान है? ठीक है, किराया दिया हुआ है। और कोई बंधन या चिंता नहीं है। पैसा भी पास में काफी है। लेकिन वह सर्वशक्तिमान, सबको ऊपर से भीतर-बाहर देखते रहने वाला ईश्वर नहीं—दादा 'एच० आर०' उसकी गिरफ्त से कैसे बचा जायेगा?

सदानंद ने सोचा कि इसके पहले कि ऊषा से जाकर लीला कुछ कहे और वह कोर्ट में मुकद्दमा दायर करे और वह समन्स उसके फ्लैट तक आयें, वह वहां से उसी तरह भाग निकले—दो जोड़ी कपड़े, स्लीपिंग बैग और बैंक अकाउंट कल पूरा खाली करा ले। कैश कितना साथ में रख सकता है। किसी दूसरे ही नाम से ट्रैवेलर्स चैक बनवा ले।

यह सब उसने दूसरे ही दिन किया। और रात की गाड़ी से वह पूरब चला गया। सीधे उड़ीसा से कटक जा पहुंचा। और एक होटल में अपना नाम महादेव शर्मा लिखवाकर रहने लगा। इसी नाम से उसने ट्रैवेलर्स

चैक वनवाये थे—वंबई में जहां उसका मनोरोग का क्लिनिक था, उससे वहुत दूर, उलटी दिशा में, एक उपनगरीय वैंक से।

अब महादेव शर्मा की एक नयी जिंदगी शुरू होती है। एक सस्ते से होटल में वह रहता है। वाजार से कुछ रंग, कुछ ब्रुश, कुछ कैनवास खरीद-कर लाया है, और दाढ़ी उसने मुंडवा दी है। मूंछ रख ली है, चीनी ढंग की होंठों के दोनों ओर लटकती-सी। होटल मालिक को उसने अपने-आपको एक आर्टिस्ट वताया है। और स्थायी ठिकाना एक झूठा ही विहार का भागलपुर का पता वता दिया है। होटल मालिक से उसकी वातचीत के हिस्से :

"तो आप मिस्टर शर्मा, कितना दिन इहां रहेगा ?"

"आप दस दिन तो रहने ही देंगे। यह एडवांस किराया ले लीजिये। मैं फिर समुद्रतट पर जाऊंगा। मेरी इच्छा पुरी से गोपालपुर जाने की है। मैं समुद्र के अलग-अलग 'मूड्स' के कई चित्र वनाना चाहता हूं।"

"उनका आप क्या करेंगे ?"

"कलकत्ता में उनका एक्जीविशन होगा।"

"समुद्र में ऐसा क्या व्यूटी आपको लगता है ?"

"समुद्र में सव तरह के जीव हैं। तरंगें हैं। सव नदियां मिलती हैं। असल में मनुष्य का सवसे पहला सहचर वही है। वहीं से सारा जीवन पैदा हुआ।"

"वाह, यह अच्छी होवी है।"

महादेव शर्मा ने अव एक अच्छी-सी पब्लिक लाइब्रेरी में जाकर समुद्र और महासागर के वारे में पढ़ना शुरू कर दिया। समुद्र में से ही तो अमृत-मंथन हुआ था। इसीलिए श्री के अर्थ हैं दोनों अमृत और विप। श्री-श्री इसीलिए एक साथ हमारे वड़े नामों के पीछे लिखते हैं। उसने संस्कृत में समुद्र के वारे में कितनी-कितनी मनोरंजक वातें पढ़ी और अपनी डायरी में जमा कर ली। उनमें से कुछ इसलिए कि लापता आदमी की यह अपने को भुलाने की यह लंबी कोशिश किस-किस तरह से व्यक्त होती रही।

समुद्र दो मर्यादाओं का पालन करता है। एक तो वह तट का उल्लंघन नहीं करता। दूसरे वह किसी भी प्यासे को एक वूंद भी नहीं देता। क्या

विचित्र बात है, इतना बड़ा जल का पारावार, पर न किसी की तृषा बुझा पाता है, न अपनी वेला से एक कदम आगे बढ़ पाता है।

समुद्र को 'नदीन' भी कहते हैं। जिसकी एक बूंद भी किसी याचक के मुंह में नहीं गिरती उसे 'न दीन' या धनी—रत्नाकर या महाब्धि कहना क्या सचमुच विरोधाभास नहीं है? ऐसा धनी भी किस काम का जो गरीब का कुछ भी भला न कर सके।

समुद्र के पेट में वड़वानल है। वह अपने अंतर की आग को ही नहीं बुझा पाता। उसका पानी किस काम का है?

समुद्र ने देवताओं को अमृत दिया और उन्हें विमुक्त कर दिया। वह मुक्तागार बना। सब उसी का ध्यान रखते हैं। छोटे-मोटे गर्मी में सूख जानेवाले तालाबों को कौन पूछता है? जबकि सचाई यह है कि आड़े वक्त वही छोटे पोखर और नदी-नाले प्यासे की प्यास बुझाने में काम आते हैं, न कि यह बड़ा भारी द्रवमय लवण का आगार!

समुद्र के कारण ही शंकर 'शशि' शेखर बना, विष्णु लक्ष्मीकांत, और देवता 'अमर' कहलाये। तीनों समुद्र से निकले; मथन के बाद—चंद्रमा, लक्ष्मी और अमृत।

हे खारे जल! तेरे ऐसे गुण के कारण कोई तेरे पास नहीं आता, ऐसी स्थिति में जल-जन्तुओं के लिए ऐसे भीषणाकार भवर क्यों रखते हो?

बड़े आदमी समुद्र की तरह होते हैं। उन्हें कोई कुछ नहीं कहता। इतनी मूल्यवान मणियों को तो नीचे दबा रखा है और ऊपर तिनके तैरा रहा है, फेन और सिपाए।

समुद्र का लक्षण यह है कि उसके जलबिंदु में (वे खारे होने से) इतनी आशा भी व्यर्थ है कि जीभ जले और प्यास दुगुनी न लगे।

समुद्र के भीतर मणियां हैं, रत्न हैं, पर्वत हैं, अनेक जीव हैं, दुग्ध (क्षीरसागर) हैं, मोतियों के ढेर हैं, बालू है, प्रवाल द्वीप हैं, मूंगे की लताएं हैं, सेवार है, जल है, और क्या कहा जाये उसका नाम भी रत्नाकर है। इस तरह दूर से दृष्टि को और कानों को सुखदाई (नाम) भी है, किन्तु पास से प्यास भी नहीं बुझती।

चाहे देवता और दानवों के सैन्य समूह से मथा जाये, चाहे मेघ और

नदियों से भरा जाये अथवा वड़वानल की आग से सोखा जाये समुद्र न तो क्षुव्ध होता है न दुवला पड़ता है।

ऐ समुद्र ! कभी समाप्त न होनेवाली और निरन्तर चलनेवाली तुम्हारी इन लहरों का क्या प्रयोजन है ? रुको, यह नदियों का जल है, इसमें तुम्हारा अपना क्या है ? जरा-सा भी जल तुम्हारा अपना नहीं।

यहां रूखे, खारे पानी के सिवा क्या है, कहीं सर्प न लिपट जायें उस डर से स्वस्थचित्त होकर इसमें नहा भी नहीं सकते, वड़ी-बड़ी मछलियां तुम्हें निगल न जाये इस डर से नाव भी नहीं चला सकते, ऐसे मरुस्थल में क्यों व्यर्थ दौड़ रहे हो ? उसने अपने हृदय में जो मणि छिपा रखे हैं, वह इतनी आसानी से देने वाला नहीं है।

समुद्र कहता है कि मेरा जल तो शाप के कारण खारा हुआ है। मैंने महोदार होकर याचक देवताओं को अमृत दिया। लक्ष्मी का आश्रय महा-मणि कौस्तुभ, सवको शीतलता देनेवाला चंद्र, और इच्छित फल देनेवाला कल्पद्रुम और कामधेनु मैंने संसार को दी, इन सब गुणों को तृणयोग्य समझकर ये लोग केवल मेरे दोप ही देखते हैं।

यदि ऊबो नहीं और सावधान होकर क्षण-भर मेरी वात सुनो तो हे समुद्र, तुमसे मैं कुछ पूछता हूं, उसका निश्चय करके उत्तर दो कि निराशा की ग्लानि से अत्यन्त उग्र अर्थात् लम्बी सांस भरते हुए प्यासे पथिक से जो तुम देखे जाते हो वह इस वड़वानल के दाह से कितना अधिक दाहक है ?

विष्णु को लक्ष्मी, शंकर को अभिनव चंद्र, इंद्र को भी उच्चैः श्रवा घोड़ा दिया, किन्तु इन सवकी क्या गिनती है जवकि प्यासे अगस्त्य को तुमने अपनी देह तक दे डाली। अतः त्रिभुवन में सागर से वढ़कर दूसरा वोधिसत्त्व और कौन हो सकता है ?

वायु के वेग के कारण यदि समुद्र रत्नों से चमचमाती हुई लहरियां उठा-उठाकर अपना किनारा वंद कर दे तो वह याचकों के विपरीत भाग्य का दोप है और इसमें उस दाता के दान भाव का थोड़ा भी दोप नहीं।

हे समुद्रतल की मूंगे की लताओं और मोती के सीपों की पंक्तियों, तुम समुद्र के लिए और समुद्र तुम्हारे लिए कल्याणकारी हों। तुम्हें ही वे मुवारक हों। मैंने तो समुद्र का समस्त फल इतने से ही प्राप्त कर लिया

कि उसके भयानक जल-जन्तुओं, अजस्र महासर्पों और मकरों-महामत्स्यों से फाड़ नहीं डाला गया।

चारों ओर की मीठे जल की नदियों से जल ले-लेकर, मानो उनसे छीनकर इस दुष्ट समुद्र ने क्या अर्जित किया ? उस सारे पानी को खारा बना डाला, बड़वाग्नि में झोंक दिया और पाताल के पेट में डाल दिया। सागर में इतना अथाह जल, पर मानव, प्यासा का प्यासा !

यह सब संस्कृत कवियों की लिखी सूक्तियां हैं। कितने हज़ार बरसों पहले की बातें। इसके लिखनेवाले और रचनेवाले कौन हैं, यह भी कोई नहीं जानता। ऐसा सुन्दर विचारों और कल्पनाओं से भरा यह संस्कृत वाङ्मय, उसके कठिन व्याकरण के डर से हमने प्रदूषित कर डाला। उसके रत्नों को भुला दिया।

उसे एक आधुनिक भारतीय कवि ने 'समुद्रभंगी' कहा है, चूंकि वह सारा कूड़ा-करकट किनारे पर लाकर जमा कर देता है।

और अब हम ही यह शिकायत करते हैं कि समुद्र से मिलनेवाली स्वास्थ्यकारक हवा, वह 'ओज़ोन' कहीं कम तो नहीं हो रही है ?

इस तरह से रोज़ वह अपनी डायरी में कई-कई बातें लिखता रहता। सब चिंताओं के मूल में उसे अपनी पहचान छिपाने की चिंता प्रधान थी।

एक दिन वह समुद्र-किनारे एक धीवर से मित्रता कर बैठा। उसने पूछा, "तुम्हारा नाम क्या है ?"

धीवर बोला—"जगन्नाथ।"

वह हंसा और बोला—"नाम इतना बड़ा, पर खाली हाथ ?"

"हमारे मां-बाप को बच्चा नहीं होता था, इसीलिए यह नाम रख दिया। हम क्या करें ? हम तो अनाथ के अनाथ हैं। बचपन में बाप-मां मर गये। तब से यहीं नाव पर काम कर रहे हैं। किनारे की झोंपड़ी में रहते हैं। पेट पाल रहे हैं, किसी तरह।"

"और कोई नहीं है तुम्हारे घर मे ?"

"हां, एक बेटी है। मेरी बीवी तो कभी की मर गई। एक और बच्चा हुआ और उसके जन्म के साथ मां और बच्चा दोनों गये।"

"समुद्र से तुम्हारी आमदनी कितनी हो जाती होगी।"

"अजी बाबूजी, क्या पूछो। मेरा पेट किसी तरह पल जाता है। पर यह मीना है, जो बाज़ार तक मछली ले जाती है। कुछ कमाई करके लाती है। अब बड़ी हो गई है न? बाप को बेटी के ब्याह की चिंता रहती है। पता नहीं कैसा पति मिले? हमारे धीवरों में तो सब बदमाश लड़के हैं। वे इस लड़की को भगा ले जाना चाहते हैं। मेरी वही अंधे की लकड़ी है। वही चली जाये, तो बाद में क्या होगा?"

महादेव शर्मा ने जेब से कुछ रुपये निकाले। पूछा—"पास में कुछ पीने को मिल जायेगा? प्यास बहुत लगी है।"

"ताड़ी की दुकान है।"

"चलो, तुम वहां तक ले चलो। तुम भी पीना, हम भी चखेंगे।" महादेव के मन में उन समुद्र जीवियों के जीवन की झांकी पाने की जिज्ञासा थी। उसे क्या पता था कि ऐसा कांड वहां हो जायेगा।

वह पहुंचा, तो उस झोंपड़ीनुमा ताड़ी की दुकान में दो ग़ाहकों में गाली-गुफ्ता चल रही थी। वह जल्दी ही मारा-मारी में परिणत हो गई। जब मामला हाथापाई पर आ पहुंचा, तो दुकानदार ने उन दोनों पियक्कड़ों को छुड़ाया।

इतने में महादेव और जगन्नाथ वहां आ पहुंचे। पूछा—"क्यों लड़ाई कर रहे हैं।"

दुकानदार—"यह रोब का ही है बाबूजी। एक कहता है, दूसरे ने उससे पैसे उधार लिये। दूसरा कहता है वह कभी का लौटा चुका है। कोई कर्ज़ा बाकी नहीं है।"

दोनों लड़ने वाले दुकान से बाहर जा चुके थे।

दुकानदार ने दोनों को गालियां दीं और कहा—"दोनों झूठे और मक्कार हैं। मुफ्त पीते भी हैं और ऊपर से रोब भी जमाते हैं!"

महादेव और जगन्नाथ एक बेंच पर बैठ गये। और उन्होंने देसी बोतल मंगवाई। जगन्नाथ 'युग-युग के प्यासे' की तरह से पीता रहा और धीरे-धीरे अंड-बंड बड़बड़ाने लगा। ओड़िया भाषा में, जो महादेव नहीं समझ रहा था। थोड़ी देर बाद वह बेंच पर से उठकर नाचने लगा, उन्मत्तों की तरह गाने लगा।

इतने में एक बड़ी-बड़ी आंखों वाली, काली-सांवली लड़की दूकान के बाहर से ही चिल्लाती आ पहुंची—"बाबू, अरे बाबू, मेरे बाप को आपने क्या कर दिया? मैं इसे बराबर पैसा नहीं देती। पीकर यह मानाल (मतवाला) हो जाता है। आपने मेरे बाप की जान संकट में डाल दी।"

महादेव समझ गया कि यह उस धीवर की बेटी मीना ही है।

वह जगन्नाथ को बाहर ले गया। दुकानदार को पैसे दे दिये। और सहारा देकर, उसे लड़खड़ाते कदमों में चलते देख, महादेव ने उस अपरिचित लड़की से कहा, "मैं झोंपड़ी तक इसे पहुंचा दूंगा। तुमसे यह संभलेगा? रास्ते में ही तुम्हें मार-पीटकर पड़ा रहेगा औंधे मुह। यह होश में नहीं है।"

लड़की कुछ बोली नहीं। वह उपकार लेना नहीं भी चाहती थी। पर और चारा भी क्या था?

यहीं से महादेव और मीना की घनिष्ठता बढ़ती चली गई।

# 11

रूपा जब अमेरिका से लौटी तो वह एक बदली हुई स्त्री बनकर। सेठ मफतलालजी की यह दब्बू लड़की, जिसे बाप ने बिना कुछ समझे-बूझे 'बालावलकर से ब्याह दिया था, वैसी हिस्टीरिया पीड़ित प्रौढ़ कुमारिका वह नहीं रही थी। उसने दुनिया देखी थी। देखी ही नहीं सुनी, सूंघी और चखी भी थी। दोनों हाथों से उस दुनिया के उसने हाथ दबाये थे, उसके हाथों में हाथ डालकर वह 'स्क्वेअर डास' भी कर चुकी थी। अब वह आसानी से पुरुषों के बहकावे में आनेवाली लड़की नहीं रह गयी थी। आर्थिक दृष्टि से स्वतन्त्र, आज़ाद ख्याल, अपने मन की मलका, वह मुक्ता महिला (लिबरेटेड वूमन) बन चुकी थी।

उसके मन में एक ही विचार था—बदला लेने का। यह आदमी अपने-आपको क्या समझता है? सदानंद सदा आनंद से नहीं रह सकेगा।

इसके लिए पहली बात जो उसके मन में उठी—वह थी सदानंद के 'बॉस' 'एच० आर०' को किसी तरह मिलने की। कुछ परिश्रम के बाद उसे उस व्यक्ति का सुराग मिल गया। और एक जगह वह 'एच० आर०' से मिली। उनकी बातचीत के अंश :

"अरे आप? ऊषाजी? मैं समझा फोन पर अंग्रेज़ी उच्चारण से कि कोई अमेरिका में बसी भारतीय प्रौढ़ महिला है। आप देखते-देखते इतनी जल्दी इतनी वयस्का कैसे हो गईं?"

"आपने जिस आदमी से मेरा परिचय कराया, और हमें विदेश में एक साथ भेजा, वह तो धोखेबाज़ निकला।"

"ओह आप बालावलकर की बात कर रही हैं? उसका अब हमारी गैंग से कोई संबंध नहीं।"

"वह हो न हो, मेरा विश्वास है कि आपको उसका वर्तमान पता अवश्य पता होगा।"

"वह लापता हो चुका।"

"कोई भी आदमी जो आपके संपर्क में एक बार आ चुका है। वह आपकी नज़र से ओझल कैसे हो सकता है?"

एच० आर० हंसा—"तो इतना ताकतवर तुम हमें मानती हो।"

"मानने की क्या बात है, आप हो ही।"

"यह तुम क्यों मानती हो?"

"आज दुनिया में पैसा सब से बड़ी शक्ति है। आप उसे चाहे जितना, चाहें जब, सब कानून-नियम तोड़कर ले आ सकते हो। और क्या चाहिए?"

"सबूत?"

"अमेरिका, स्विटजरलैंड, सारे फ्री पोर्ट्स—बैरूत, अदन, सिंगापुर हाँगकाँग—कहां आपके एजंट नहीं हैं? 'एच० आर०' दो अक्षर कहना ही काफी है। जहां जो जानकार लोग हैं। वे इस नाम के आगे सिर झुकाते हैं। थरथर कांपते हैं। चाहे जितना पैसा जब चाहिए तब जहां चाहिए वहां लेकर सामने रख देते हैं।"

एच० आर० फिर बोला—"हां, यह सच है।"

"फिर बताइये कि वह सदानंद कहा भाग गया? आपकी चंगुल में आने पर कोई इतनी आसानी से भाग नही सकता। आपने ही उसे किसी गुप्त काम पर भेजा होगा। आप बताना नही चाहते।"

इतने में एच० आर० के एक चमचे ने अनुमान फेंका—"बॉस, वह मूलतः उत्तर का रहने वाला है। उधर लौटकर जा नही सकता। दक्षिण से आया था और वह बंबई और समुद्र किनारे पर रहने का आदी हो गया था। अब जरूर वह हिंदुस्तान के या तो मध्य भाग में कही छिपा होगा या पूरब की ओर गया होगा—।"

"इतने बड़े मुल्क मे उसे खोज निकालना समुद्र में से एक बूंद को खोजने की तरह है।"

"मैं क्या करूं? मैं उसके बिना मर जाऊंगी। मुझे उससे बदला लेना है। आप जो कहोगे वह काम करने को मैं तैयार हूं।" उसने गिड़गिड़ाते हुए कहा।

एच० आर० को लगा कि यह घर बैठे जैसे लक्ष्मी आ गई। इस स्त्री की शिक्षा भी काफी है। अकेली है। चतुर है। क्यों न इसका उपयोग महत्त्वपूर्ण राजनैतिक कामों मे लिया जाये। उसने पैंतरा बदलकर कहा—"हां, हम पता करते हैं पूर्व भारत मे हमारे 'कांटेक्टों' से—कही सदानंद बालावलकर की हुलिया, नही तो अगूठो के निशान वाला कोई व्यक्ति मिल जाये तो पता लगाते हैं। मेरा कयास है कि वह अब बड़े शहर मे नही होगा। वहां उसके पहचाने जाने का डर बहुत है। इसलिए वह ऐसी किसी अज्ञात जगह में होगा, जहा पुलिस के रेकार्डों मे उसकी छाया या छवि पहुंच नही पाई हो। पूर्व मे आसाम, बंगाल और उड़ीसा तीन ही तो प्रदेश हैं। आसाम मे वह जायेगा नही। उसके विचार इतने सुधरे हुए और सुविधापसंद हैं कि वह कष्ट मे नही जायेगा। वह बंगाल मे या उड़ीसा मे होगा। उसने कामधधा बदल लिया होगा। वह बिजिनेस कर सकता नही। स्कूल-कालेज मे कोई नौकरी उसे मिल सकती नही। वह बी० ए० में पढ़ता था। डिग्री उसके पास है नही। बिना ट्रेनिंग या प्रमाण-पत्र के उसे नौकरी कौन देगा?"

"फिर वह क्या कर रहा होगा ?"

ऊषा ने कहा—"वह पत्रकार बन सकता है। उसे लिखने का शौक था। डायरियां उसने अनेक रंगी थीं। बाद में कई नष्ट भी कर डाली।"

"क्या वह और कोई कला जानता था ?"

"फोटोग्राफी करता था।"

"पर कैमरा उसके पास नहीं था। वह खरीदे ऐसी स्थिति में नहीं था।"

"फिर ?"

"देखिये, अधीर मत हूजिये। हम कोशिश करते हैं।"

'एच० आर०' के एक सहकारी ने सुझाया —"सदानंद चित्रकार बन सकता है।"

"चित्रकारी के भी अनेक रूप हैं। क्या वह उसका व्यवसाय कर सकता है ?"

"क्यों नहीं ? वह चित्रकला सीखा है। ऐसा उसकी डायरी से पता लगता है।"

"अच्छा ऊषा, आज से पंद्रह दिन बाद हम यहीं मिलेंगे। तब तक शायद सदानंद का कोई सुराग मिल जाये।"

ऊषा आशा लेकर चली गई।

# 12

ओड़िसा तंत्र की भी भूमि थी। प्राचीन काल से वहां दक्षिणाचार और वामाचार दोनों प्रचलित रहे हैं। दोनों मिल गये मध्यकाल में। संस्कृत में कहावत थी, "षट्कर्णोभिद्यते मंत्रः" (मंत्र चार कानों से आगे छह कानों तक गया कि नष्ट हो गया)। ओड़िया भाषा में भी कहावत है,

"षड कान मंत्र भेद।"

मीना केवल धीवर जगन्नाथ की बेटी नहीं थी। वह तंत्र-मंत्र की जानकार थी। यह जब महादेव ने सुना तो उसकी उत्सुकता और बढ़ गई। मीना वे पढ़ी-लिखी लड़की, उसकी इसमें क्या पैठ हो सकती थी भला? तंत्र ये ही साधारण जनों के लिए—अ-पढ़ितों के लिए।

पुरी में जगन्नाथ भैरव रूप में प्रतिष्ठित हैं। 'विमला भैरवी यत्र जगन्नाथस्तु भैरवः।' मीना की बातें समझने के लिए महादेव ने किताबों में से पढ़ना शुरू किया—ओड़िशा में तंत्र और मंत्र का इतिहास। उसे पता चला कि उड़ीसा का तंत्राचल तीन भागों में विभक्त है : सुवर्णरेखा से ऋषिकुल्या तक विरजामंडल। उसे 'महोदधि तंत्र भाग' कहते हैं। ऋषिकुल्या से संपूर्ण दक्षिण उड़ीसा 'शावरी तंत्र भाग' कहलाता है। पश्चिम उड़ीसा, जहां महादेव इस समय था, "बौद्ध तंत्र भाग" था। इस बौद्ध तंत्र भाग में विख्यात राजा इंद्रभूति और उसकी बहन लक्ष्मीकरा ने अद्भुत तांत्रिक उपलब्धियां हासिल कीं। ऐसा मिथक वहां प्रचलित था। जगन्नाथ पीठ पुरी में ही अक्षोभ्य, भैरव ने अपनी साधना द्वारा भगवती तारा के दर्शन किये। दस महाविद्याओं में द्वितीय महाविद्या हैं—देवी तारा। उनका अंगराग नीला होने से उनको नील-सरस्वती के नाम से भी जाना गया। इसीलिए उड़ीसा को नील-शैल या नीलगिरि कहते हैं।

महान् बौद्ध तांत्रिक इंद्रभूति ने उड़ीसा के प्रसिद्ध तांत्रिक कंबलपाद और राजगोपाल के पुत्र अनंगवज्र से तंत्र-शिक्षा ली। इंद्रभूति संबलपुर के राजा थे। इंद्रभूति ने बौद्ध-परिवार की कल्पना की :

वज्रसत्त्व यानी अनन्त शून्य का सारतत्त्व

प्रज्ञापारमिता यानी आध्यात्मिक अपौरुषेय ज्ञान

इस दम्पति से पैदा हुए श्वेतांग, वैरोचन, नीलाभ-अक्षोभ्य, पीताभ रत्नसंभव, अरुणाभ अमिताभ और श्यामाग अमोघसिद्धि। वैरोचन की शक्ति वज्रधात्वीश्वरी और अक्षोभ्य की शक्ति लोचना की कल्पना इंद्रभूति ने की। इंद्रभूति की उपास्या देवी थी वज्रवाराही और कुरुकुल्या। 'साधना-माला' ग्रंथ से ज्ञात होता है कि इन देवियों का अस्तित्व

उड्डीयान में ही संभव था—क्योंकि उड़ीसा के सिवा और कहीं इनकी मूर्तियां नहीं हैं···

मीना यह सब गहन दर्शन नहीं जानती। उसने बताया कि उत्सव विशेष पर उसकी देह में देवी-देवता का आविर्भाव होता है और कई गुप्त बातें वे प्रकट कर देते हैं। वह 'गुणियों' के साथ बैठकर यह सब सीखी है। नहीं तो यह निकम्मा बाप तो, जितनी मछली पकड़ता नहीं, उससे ज्यादा वह पीने-पिलाने और जुआ खेलने में उड़ा देता है।

···महादेव पुस्तकों में पढ़ता है—'प्राकृत तंत्र-मंत्र के दृष्टा शिव अथवा भैरव का उड्डीश तंत्र एवं डडांबर तंत्र· उड्डीश नामक एक प्रधान भैरव द्वारा ही संभव हो सका। हम उड्डीश तंत्र का वाचन शिव ने तंत्र-साधक रावण के समक्ष किया था, उडांबर तंत्र पार्वती ने शिव से सुना।

उपनिषदों के रचयिताओं ने शिव, काली को देवी-देवता के रूप में आर्य देव पूजा में ग्रहण किया। 'ॐ धिया चक्रे वरेण्यो, भूतानां गर्भयादधे दक्षस्य पितरंतना' (ऋग्वेद 3.6.9)—दक्षतना या दक्षतनया यज्ञवेदी कुंड का ही एक नाम था। मुण्डकोपानिषत् (1.2.4) में आते हैं काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिना, विश्वरुचि नामक सात अग्निशिखाओं या अग्नि-जिह्वाओं के अभिधान।...

आर्य अनार्य का भेद दूर करने वाली प्रथम विप्लविनी यही दक्ष-तनया 'सती' थी। उसने अनार्य शिव को अपना पति माना। दक्ष का शिव विहीन यज्ञ एक भयानक संघर्ष में बदल गया। दक्ष प्रजापति को अपमानित होकर शिव को महादेव मानना पड़ा। केनोपनिषत् में यही कथा उमा-हेमवती की कथा आती है। यज्ञ-विध्वंस के पहले, दक्ष की सभा में, उमा ने इंद्र के समक्ष तांत्रिक प्रबोध में गुंफित ज्ञान चर्चा की। वैदिक समय में अश्वमेध यज्ञ चैत्र मास के चित्रा नक्षत्र में अनुष्ठित किया जाता था। ठीक इसी समय दुर्गा की वासन्ती पूजा प्रचलित है।

क्या मीना यह सब जानती है? नहीं। वह केवल आदिवासियों के गीत गाती है—

अथर नई रे पथर कली भेला
साहा होई शिवू मा आ जे मंगला

मा रे नोई जे न थ बान्क
पोतरी समतूल
कुजी लहरी रे भासी जे जाउछी
आदिन लाऊ फुल
आदिन लाऊ फुल न भे तो न भे जाऊ
कलाई फूल केहेत मुहल
जवाब देई जाऊ

(हे मंगला माता, नदी की गहराई असीम है और उस पर पत्थर का बेड़ा तैराया गया है। तुम्हारी कृपा से यह बेड़ा आप ही शीघ्र तैरने लगेगा। झील की तरह समतल है। नदी का मार्ग टेढ़ा-मेढ़ा है। असामयिक लौकी का फूल नदी में बहा जाता है। इसे नदी में बहने दो। मेरे प्रिय, करेले के फूल को 'हां' कहने दो।)

धीरे-धीरे मीना महादेव को उन सब गुप्त स्थानों पर ले गई जहां पूजा की गुह्य तांत्रिक विधियां चलती थीं। महादेव भी उसे प्रचुर दक्षिणा देता। और वह ज्ञान प्राप्ति का सदा आनंद देने वाला मार्ग चलता गया, चलता गया। मीना अपने बाप को ताड़ी की एक बोतल थमा देती और वह चुपचाप झोपड़ी में पड़ा रहता।

यह एक अजीब तरह का नया रिश्ता विकसित होता जा रहा था।

## 13

प्रद्योत, यानी अरविंद मल्होत्रा के सगे भाई ने, एक बार बंबई में अपने खोये हुए भाई को देखा, और उसका पीछा किया और जाना कि वह अमेरिका जा रहा है। उसके बाद उसे वह भूला नहीं था। दो साल बाद वह पुनः उसी उधेड़-बुन में लगा रहा कि अपने खोये हुए भाई को

वापिस ले आयेगा। अब की बार उसने सदानंद वालावलकर के मनोरोग-चिकित्सालय का पता लगाया, पर वह नहीं लगा। परंतु उसने उसकी पत्नी ऊषा का पता कर लिया। वह अमेरिका से लौट आई है और अपने खोये हुए पति को खोज रही है। दोनों एक ही लापता आदमी की तलाश में थे।

इस बात का पता उसे एक मनोरंजक ढंग से लगा।

एक दिन प्रशांत बंबई में एक होटल के बाहर के हिस्से में बैठा था कि उसने देखा, एक स्त्री बार-बार उसकी ओर देख रही है। वह स्त्री बहुत स्मार्ट थी। उसके बाल कटे हुए थे। उसने स्लीवलेस ब्लाउज़ पहना था, नीचे जीन्स थे। काफी मेकअप किया हुआ था। वह पहले समझा ऐसी ही कोई नये ढंग की औरत होगी। जो शाम के वक्त होटलों के आस-पास मंडराती रहती है। पर काफी की दो चुस्कियों के बाद उसने फिर देखा कि वही स्त्री पुनः उसकी ओर एकटक देख ही नहीं रही है बल्कि उसके पास आ रही है, तो वह चौंक उठा। उसने अपने मन को शांत किया और सोचा, 'चलो, देखें क्या माजरा है।'

वह अपरिचित महिला बड़े करीब आकर उसकी आंखों में घूरती हुई बोली—"सदानंद !"

"मेरा नाम सदानंद नहीं।"

"मुझे धोखा नहीं दे सकते तुम। दाढ़ी तुमने साफ कर दी है पर इसका मतलब तुम वह नहीं हो यह ठीक नहीं। बाल ठीक वैसे ही हैं। तुम सदानंद ही हो।"

"नहीं, नहीं, नहीं।"

वह स्त्री ज़ोर-ज़ोर से बोलने लगी।

प्रशांत ने उसे पास बैठाया और पूछा—"कौन सदानंद ?"

"मेरा स्वामी।"

"वह क्या खो गया है ?"

"वह मुझे धोखा देकर अमेरिका ले गया। मेरा सब पैसा लेकर भारत लौट आया···।"

"मैंने अमेरिका तो दूर, अदन तक भी प्रवास नहीं किया है।"

"क्यों बनते हो ? वह बेरूत और जूरिख और...।"

"आपको कुछ 'हैल्यूमिनेशन' (आभास) हो रहा है, मैडम ! ऐसा हो जाता है। हम जिस चीज की खोज में लगे रहते हैं, वही हमें सब ओर दिखाई देने लग जाती है। कंस को जल-स्थल, काष्ठ, पाषाण सब जगह कृष्ण ही कृष्ण नजर आता था···"

यह धार्मिक तर्क भी उस महिला पर जब कारगर नहीं हुआ। तब प्रशांत ने उससे एक-एक कर बात पूछना शुरू किया। पहले अपना परिचय दिया—"मेरा नाम है प्रशांत मल्होत्रा। मैं दिल्ली का रहने वाला हूं। पांच साल से मेरा भाई अरविंद घर से लापता है। वह मेरा सगा भाई है। मैं एक कंपनी का एजेंट हूं और मुझे भारत-भर में घूमना पड़ता है। एक बार गोआ में एक होटल में मैंने उसे देखा था। उसका बहुत पीछा भी किया था। तब उसका नाम देवी सेन था। मैंने उसका बहुत पीछा किया। पता लगा कि वह अमेरिका भाग गया है, किसी लड़की को लेकर···।"

"वह अभागी लड़की मैं ही हूं। पर तुम वह नहीं हो। इसका क्या सबूत है?"

प्रशांत हंसा और उसने बायां गाल रोशनी की ओर कर दिया। पूछा—"उसके बायें गाल पर ठुड्डी के पास तिल था। वही उसकी निशानी है। दाढ़ी रख लेता तो वह छिप जाता था। मेरे चेहरे पर वह तिल नहीं है।"

अब कृपा की जान में जान आई। आंखों में आंसू भरकर वह कहने लगी—"माफ कीजीये, मैं धोखा खा गई। एक-सा चेहरा, एक-सी आंखें, एक-सा बाल रखने का अंदाज, एक-सा कद, नाक-नक्श—तुम सदानंद के सगे भाई हो, और यहां मिल जाओगे, इसका पता ही नहीं था। तुम मेरे साथ चलो। हम मिलकर कुछ योजना बनाते हैं। तुम्हें अपना खोया हुआ भाई चाहिए, । मुझे मेरा खोया हुआ स्वामी···।"

"पर इतनी बड़ी दुनिया में; और दुनिया को छोड़ दें फिर भी हिंदुस्तान में कैसे खोजा जाये अरविंद को···?"

"तुम उसे अरविंद कहते हो, वह तो सदानंद है।"

"नहीं उसका असली नाम अरविंद मल्होत्रा है। वह बी० ए० में पढ़ता था, तभी घर से भाग निकला है। वह गोआ के किसी बैंक में काम करता था। तब उसकी मैत्री किसी लड़की से हुई···।"

"मैत्री नहीं। मेरी उससे शादी तै हुई। मेरे पिता ने उसे शिकागो जाने का हवाई जहाज का टिकिट दिया। उसने वहां विदेश यात्रा में कैसे कैसे आश्वासन दिये। मैंने जीवन में दूसरी बार धोखा खाया। सारी पुरुष जाति ही इस तरह से स्त्री को धोखा देने वाली होती है।"

"सारी पुरुष जाति को क्यों बदनाम करती हो? स्त्रियां क्या कम धोखा देने वाली होती हैं? यह सब अपने-अपने संयोग की बात है।"

"मैं अबकी बार सदानंद मिले तो—।"

"सदानंद मत कहो, अरविंद कहो।"

"पता नहीं उस दुष्ट ने अब क्या नाम रख लिया होगा। वह मिल जाये तो उसे अगर मैं जेल की हवा न खाने को बाध्य करूं तो···।"

"आप जेल की हवा किस तरह से उसे खिलायेंगी?"

"एक तो वह नाम बदलते घूमता है। यह एक गुनाह है। दूसरे वह बिना डिग्री के या सही क्वालिफिकेशन के मनोरोग-चिकित्सक बना फिरता है। उस नाम से दुकान चलाता है। यह दूसरी धोखाधड़ी हुई। तीसरे, उसने मुझसे रजिस्टर्ड शादी करके, वह अमेरिका में मेरी सारी संपत्ति लेकर एक दिन भारत भाग आया। कितने-कितने गुनाह किये हैं उसने?"

"यह सब तो तुम जानती हो। पर वह भलामानस तो अब तक दूसरे ही रूप में और कहीं विचार रहा होगा। पता नहीं उसने और कोई शादी ही कर ली हो।"

"इस सारे छल-कपट और धोखाधड़ी में मेरे दिल के मरीज़ पिता मर गये। मुझे मानसिक कष्ट कितना हुआ। सबका हरजाना उसे देना होगा।"

"यदि वह कहे कि आपसे वह खुश नहीं है। और तलाक देना चाहता है।"

"तलाक यों ही नहीं दिया जा सकता। कारण दिखाना होगा···।"

"कानून यहां भी पुरुष के हक में है। तीन साल वह पत्नी से अलग रहे और सीधे 'सेपेरेशन' ले सकता है।"

"पर उसे मुझे 'एलिमनी' (दंड स्वरूप पत्नी को दी जाने वाली रकम) देनी होगी। मैं ऐसे नहीं छोड़ूंगी उसे..."

"पर पहले वह आपकी चंगुल में आये तब है न ?"

"एक काम करते हैं। तुम हिंदुस्तान भर अपनी एजेंसी के सिलसिले में घूमते ही हो। बड़े-बड़े शहरों के बड़े अखबारों में उसका फोटो और वर्णन छापते हैं। लापता व्यक्ति को ला देने वालों को बड़ा इनाम। कुछ भी राशि लिख देते हैं। पचास हजार...।"

"बस, आदमी की कीमत सिर्फ पचास हजार ? अजी, एक-एक हीरा और एक मिंक कोट इससे ज्यादा दाम वाला होता है।"

"पुलिस को इत्तिला देते हैं।"

"पुलिस ऐसे मामलों में दिलचस्पी नहीं लेती, जब तक उसमें उनका भी कोई लाभ न हो।"

"आप तो मेरी ही बात को काट देते हैं। निराश कर देते हैं। आपको अपने भाई को खोज निकालना है या नहीं ?"

"क्यों नहीं ? उसके मिलने से पिताजी कितने खुश होंगे।"

"तो क्यों नहीं, तुम और हम मिलकर उसकी खोज करते हैं।"

अभी तक रूपा ने यह नहीं बताया था कि उसका 'एच० आर०' की गैंग से संबंध है, और उसका अनुमान है कि शायद वह देश के पूर्वी अंचल में कहीं है।

प्रशांत ने पूछा—"तुम्हारा क्या अंदाज है कि वह कहां होगा ?"

रूपा—"मेरा ख्याल है कि वह भारत के पूर्वांचल में होगा।"

प्रशांत—"क्यों ?"

"उसे समुद्र-तट बहुत पसंद है। वह केरल में था। गोआ में था। समुद्र से लगाव के कारण बंबई में था। विदेश में भी वह समुद्रतटीय देशों और स्थानों में बहुत घूमा करता था। उसे लगता था कि वह गये जन्म में कोई समुद्र पर घूमते रहनेवाला नाविक था। जैसे कि मनुष्य इतनी सारी भीड़ में, जन-कोलाहल में खो जाता है, वैसे ही वह कहता था—हर मनुष्य एक बूंद है जो सागर में मिल जाने को व्याकुल है। कभी कभी वह अक्ल की बात करता था। कहीं न कहीं उसके भीतर एक

भविष्यवक्ता दोनों होता है।···

राव ईसाई थे। उन्हें जगन्नाथ की पूजा और ईसाई धर्म की मान्यताओं में कई समानताएं दिखाई दीं।

जगन्नाथ सारे भारतवर्ष में एकमात्र लकड़ी का देवता (दारु-विग्रह) है। बाइबिल में संसार-वृक्ष की उपासना प्रसिद्ध है। 'सावारेस मेटाफिज़िका' ग्रंथ में "प्लेट-इनकोमीवस' नामक विशाल संसार-वृक्ष का चित्र है। 'पुराने क़रार' (टेस्टामेंट) में 'ट्री आफ लाइफ़' और 'आइ हैव गिवन यू एवरी हर्ब बेयरिंग सीड' की चर्चा है। गीता में 'ऊर्ध्वमूलमध : शाखमश्वत्थंप्राहुरव्ययम्' कहा है। उसके छंद ही पत्ते हैं।' 'वृक्षों में मैं पीपल हूं' स्वयं भगवान ने कहा है।

1522 ईस्वी के एक उत्कीर्ण चित्र में ईसामसीह को वृक्ष के रूप में दिखाया गया है। उसका नाम 'लिग्नम फिवी' है। कई विद्वानों का मत है कि यह वृक्ष ही सबका त्राण करने वाला सलीब या 'क्रास' है।

वेदकालीन प्रणव-तंत्र में त्रिमूर्ति है। बौद्धों के त्रिरत्न हैं। ईसाई धर्म में 'पुराने क़रार' के 35वें अध्याय में मिस्त्र के बारे में जेकब कहता है—मिस्त्र से जो जीव मेरे साथ आये वे 'तीन कुड़ी (बीस) और छह' थे। जगन्नाथ में तीन मूर्तियां हैं। पुराना क़रार कहता है—'पुरुषोत्तम ने जीवात्मा अपनी ही प्रतिमा में बनाया, 'एक पुरुष, एक नारी'—मानो एक दोनों को बनाने वाला, और स्त्री-पुरुष—तीन मूर्तियां हुईं। यही तो क्षर-अक्षर और उत्तम तत्व है, गीता के।

जगन्नाथ की आंखें वर्तुलाकार क्यों हैं? यह वर्तुलाकार हर गिरिजाघर में है। यह 'वृत्त' जगन्नाथ की आंखें ही नहीं, उदर, मंडल, यंत्र, पताका सबमें है। जगन्नाथ की दो बड़ी-बड़ी वर्तुलाकार आंखें उड़िया साहित्य में 'चकाडोला' कहलाती हैं। 'डिक्शनरी ऑफ सिंबल्स' नामक पाश्चात्य विद्वान् की पुस्तक में इन तीन वर्तुलाकारों के अर्थ दिये हैं। चीन में भी स्वर्ग का प्रतीक ऐसी मंडलाकार मूर्ति है। वे तीन अर्थ यों हैं—

● बिन्दु—यूनिटी आफ दि ओरिजिन।

○ वृत्त—इनफिनिटी आफ दि यूनिवर्स।

⊙ केन्द्र—सेंटर आफ इन्फिनिटी ।

सन्त और अनन्त का कैसा मेल है यह! जब दोनों एक होता है तभी तो दृष्टि बन जाती है।

जगन्नाथ को गुंडिचा (रथयात्रा) के समय, काष्ठ से बनी वेष्ठनी, जो 'क्रास' की तरह होती है, पहनाई जाती है। उसे 'सेना पट्टा' कहते हैं। मंदिर के प्राचीनतम 'शवर' (शिकारी) सामन्तों द्वारा वह पहनाया जाता है। वह सेनापट्टा पहन लेने के बाद छुआछूत का भाव दूर हो जाता है। यह सेनापट्टा 'क्रॉस' के आकार का है, जिसे शवर आदिवासी पवित्र और उपादेय मानते हैं। यही स्वस्तिक का पहला रूप है।

स्कंदपुराण के जगन्नाथ-पीठ वर्णन और वैष्णव दर्शन के 'त्रिपाद विभूति वैकुंठ' वर्णन का जेरुसलम के वर्णन से अद्भुत साम्य है। 'स्टडीज इन कंपेरेटिव रिलीजन' (आटम् 1971) में एक निबंध में इसे सचित्र प्रमाणित किया गया है।

उन्नीसवीं सदी के अंत में साधु सुंदरदास उत्कल के एक साधु हुए। उनका मठ पुरी में था। उस मठ में ईसामसीह और कृष्ण की मूर्तियों की पूजा वे साथ-साथ करते थे। केष्टो और ख्रीष्ट का नाम-साम्य भी था। अब यह मठ पुरी की मरिचिकोट गली में है।

राव यह सब जानने के लिए पुरी पहुंचा।

तभी 'एच० आर०' का संदेश और उसके साथ डा० सदानंद वालावलकर का फोटो आ पहुंचा। इस आदमी को किसी तरह खोजकर निकालना है। केवल इतना संकेत मिला कि वह समुद्र किनारे कहीं है।

समुद्र के किनारे के कई होटल खोजे। एक जगह जाकर यह पता चला कि एक आदमी वहां आया था, जो समुद्र के चित्र बनाता था। कई हफ्ते रहा। फिर वहां से चला गया।

"क्या चित्र भी साथ ले गया?"

"हां।"

"उसका हुलिया कैसा था?"

"अब क्या बतावें साहब, यही दुबला-पतला, छरहरा आदमी रहा। समुद्र किनारे बहुत घूमता था।"

राव ने फोटो दिखाया।

"नहीं साहब, दाढ़ी तो उसकी बिलकुल नहीं थी।"

"और कोई खास बात?"

"वह रात को जागता था। और कुछ लिखता रहता था।"

"पर आप उसकी इतनी खोज-खबर क्यों ले रहे हैं?"

"हम सी० आई० डी० के आदमी हैं और उस आदमी को पकड़ना जरूरी है।"

इतने में होटल के एक नौकर ने खबर दी—"वह बाबू तो बड़ा रंगीन था। उसने उस जगन्नाथ धीवर की बेटी मीना को पटाया उसी के साथ वह पता नहीं कहां भाग गया?"

एक और सुराग मिला।

राव जगन्नाथ धीवर की झोंपड़ी में पहुंचा। एक नया शहरी बाबू आता देखकर वह आगबबूला हो गया। "ये सब शहर के गुंडे-लफंगे, कहां-कहां से चले आते हैं। देखिये, मेरी सोने जैसी बेटी को ही ले गया।"

"वह भी तो राजी होगी, तभी तो दोनों गये।"

"मैंने मीना को कुछ नहीं किया था। मैं उसे मारता नहीं था। मैंने कभी उसे भला-बुरा नहीं कहा। गाली नहीं दी। उसकी मां मर गई—उसके बाद वही तो घर चलाती थी। और क्या कहूं।"

"जब वे दोनों गये उस दिन तुम क्या कर रहे थे?"

"मैं मछली पकड़ने गया था। शाम को थका-मांदा आया। मीना ने मुझे दो बोतलें ताड़ी की दी। मैंने पूछा भी—आज इतनी खुश-खुश नजर आ रही हो। बोली—बाबू दे गया था, आपके लिए।"

"किस खुशी में?"

"उसे कोई काम मिल गया है। उसने मुझे भी यह लाकिट दिया चांदी का।"

"वाह! तू तो पूरी दुलहिन लगने लगी। पर अपनी मरजाद छोड़कर

ऊंची जात में ब्याह न करना। ज़िंदगी खराब होगी। ऊंची जातवाले का कोई भरोसा नहीं होता, समझी?

"मीना सिर्फ हंसी और चली गई। उसने उस दिन अपनी अच्छी-वाली साड़ी पहनी थी।

"रात को मैं देर से पीकर लौटा तो देखा घर खुला पड़ा है। बेटी नहीं है। मैंने सोचा—चांदनी रात है—कहीं सहेलियों के साथ नाच-गान में मस्त होगी। मैं सो गया।

"सवेरे उठा, तो देखा मीना नहीं लौटी। जरूर उस बदमाश बाबू ने उस पर जादू कर दिया होगा। अब मैं जिंदा रहकर क्या करूंगा? मुझे यह बड़ा समुन्दर क्यों नहीं ले जाता? कोई बड़ी मछली मुझे अपना खाद्य बना ले। मैंने अपने हाथों अपनी मीना को लुटा दिया। मेरे जैसा पापी कौन होगा?"

राव ने पूछा—"मान लो, वह बाबू उसे न ले गया हो—क्योंकि वह ऐसी एक धीवरिन को अपने साथ क्यों ले जायेगा? तो वह और कहां होगी?"

जगन्नाथ ने कहा—"वह बाबा के पास गई होगी।"

राव—"यह बाबा कौन है?"

जगन्नाथ—"बड़ा तांत्रिक है। उसी के मठ में वह चली गई होगी।"

राव ने अता-पता लिया और जंगल में आत्म-रक्षा के लिए एक पिस्तौल रखकर वह उस अघोरी बाबा के डेरे पर पहुंचा।

## 15

विचित्र जगह थी। और विचित्र उसकी आस-पास की वनराजि। घना जंगल था। वहां तक पहुंचने का मार्ग भी बहुत बीहड़ था। कोई

बस्ती आसपास नहीं। यह आदमी यहां अकेले गुफा में कैसे रहता होगा? क्या उसे जंगली जानवरों का डर नहीं था? पास में ही श्मशान था और वह नदी किनारे था।

वहां दो-चार डोमों की बस्ती थी। एक मंदिर भी था काली का। पुजारी रहता था। ज्यादातर दूर के गांव के असामाजिक तत्वों का वह अड्डा था। पुजारी खूब गांजा पीता। यहां लोग जुआ खेलते रहते और सब तरह के लूटपाट के किस्से चलते रहते। सुनसान रास्ते के पीपल के नीचे ही अक्सर हत्याएं हो जाती। लोग नाम किसी पिशाच का ले लेते।

ऐसी बस्ती में मीना क्या करने आई होगी? क्यों आई होगी?

जरूर इसके पीछे कोई रहस्य है—राव ने सोचा।

टार्च और जरूरी खाने की चीजें, वाटरबॉटल सब लेकर वह चला था। पर रात कैसे गुजारेगा इसकी बात उसने सोची नहीं थी। वहां तक पहुंचते-पहुंचते शाम हो आई थी।

गाव में एक सरायनुमा जगह थी। वहीं उसने डेरा डाल दिया। कुछ पेट-पूजा की और उस एकांत स्थान में एक दीवार की ओट में लेटा रहा। उसने तै किया था कि सवेरे वहां उस तांत्रिक अघोरी बाबा के पास पहुंचेगा। तब उसकी पूजा भी हो जाती है। बाबा खुशी के मिजाज में होते हैं। दो-चार चेले भी आ जुटते हैं।

वहा पहुंचने पर उसे अपेक्षित लडकी वहां मिल गई। वह मीना ही थी। सब उसी नाम से उसे पुकार रहे थे। बाबा की वह चेलिन बन चुकी थी।

पर मुख्य जिस आदमी को खोजने वहां इतने कष्ट सहन करके आया था, वह लापता था। सदानंद कहां था?

राव को पता नहीं था कि सदानंद महादेव बन चुका था। एकदम उसके बारे में पूछना भी ठीक नहीं था।

बाबा ने पूछा—"क्या चिंता है तेरी?"

राव—"एक खोये हुए आदमी के बारे में पूछने आया हूं।"

बाबा—"तुम पुलिस के आदमी हो?"

राव—"नहीं।"

बाबा—"फिर क्यों पूछते हो ?"

राव—"जानने के लिए।"

बाबा—"जानने के लिए दुनिया में और बहुत-सी बातें हैं।"

राव—"आप तो त्रिकालदर्शी हैं। बता दीजिये कि वह किस दिशा में है ?"

बाबा—"फिर वही प्रश्न ? ऐसे सवालों के हम जवाब नहीं देते।"

राव—"क्या मैं मीना भैरवी से पूछ सकता हूं ?"

बाबा (अट्टहास कर)—"पूछ ! पूछकर देख ले…।"

राव—"मीना शक्ती ! कहां है वह आदमी जो तुम्हारे पिता को रोज एक बोतल शराब दे आता था।"

मीना—"मैं नहीं जानती। ऐसा कोई आदमी नहीं था।"

राव—"क्या तुम्हारे पिता झूठ बोलते हैं ?"

मीना—"पीने के बाद आदमी कुछ भी बोल सकता है। उसे होश तो नहीं रहता।"

राव ने सोचा, ऐसे काम नहीं चलेगा। वह आया और वैसे ही चुपचाप लौट गया। 'एच० आर०' को उसने सूचना दी—कुछ-कुछ सुराग लगा है। पर लापता अभी लापता है।

एच० आर० ने ऊषा को सूचना दी। ऊषा ने प्रशांत को। कुछ दिनों बाद ऊषा और प्रशांत बाबा अघोरनाथ और मीना भैरवी के दर्शनार्थ आ पहुंचे। राव उनके साथ जान-बूझकर नहीं आया था।

दोनों ने आकर बाबा को प्रणाम किया। बाबा वैसे ही पहेलियां बुझाने वाली भाषा में बोलते थे।

बाबा—"बच्चा, क्यों आए हो ?"

प्रशांत—"दर्शन के लिए।"

बाबा—"हो गये दर्शन, भाग जाओ ?"

ऊषा—"भागकर किधर जायें ?"

बाबा—"क्यों—आठों दिशा खुली पड़ी हैं। रोक कहां है ?"

प्रशांत—"रुकावट भीतर है।"

बाबा—"वह क्या है ?"

रूपा—"पैर नहीं उठते।"

बाबा—"क्या पैरों में कोई रोग है?"

रूपा—"मन का सवाल है।"

बाबा—"मत उठो। बैठे रहो। बाबा और कुछ नहीं कहेगा।"

थोड़ी देर मौन।

मीना भैरवी आ गई। कुछ और भक्त आ गए। उन्हें लाल फूल दिये। वही बाबा का प्रसाद था।

मीना—"तुम कौन हो? कुछ पहचाने से लगते हो। पहले तुम्हें कहीं देखा है।"

प्रशांत—"वह मेरा भाई होगा। उसका मेरा चेहरा एक जैसा है।"

मीना—"उसने तो नहीं बताया कि उसका कोई भाई है। तुम झूठ बोलते हो।"

प्रशांत—"कभी-कभी आदमी जान-बूझकर भी तो झूठ बोलता है।"

मीना—"वह झूठा नहीं था।"

प्रशांत—"वह क्या करता था?"

मीना—"वह समुन्दर देखता रहता और चित्र बनाता रहता था।"

रूपा—"क्या उसने तुम्हारा भी चित्र बनाया?"

मीना—"हिश्त! कैसी बात करती हो? मैं समुद्र थोड़े ही हूं।"

प्रशांत ने रूपा की ओर देखकर कहा—"समुद्र और नारी में बहुत-सी समानताएं हैं। दोनों अपनी मर्यादा नहीं उलांघते। दोनों के हृदय के भीतर पता नहीं कितने आंसू मोती बनते रहते हैं, कितना हाहाकार है…।"

रूपा ने हंसी में कहा—"यहां आपके सामने दो-दो समुद्र हैं।"

प्रशांत—"अच्छा, मीना भैरवी आप बताइये कि वह समुद्र के चित्र बनाने वाला किधर चला गया।"

मीना—"मैं क्या जानूं। एक बस आई, उसमें उसने सामान रखा। धूल उड़ाती वह चली गई।"

ऊषा—"उसने बताया नहीं, कहां जा रहा है।"

मीना—"मैंने पूछा होता तो वह बताता। मैंने तो सिर्फ रुक जाने को कहा था। वह नहीं रुका।"

ऊषा—"ऐसी क्या जल्दी थी?"

मीना—"वह बोला था कि मेरा काम बाबा तक तुझे पहुंचा देना था। वह पूरा हो गया। अब आगे का रास्ता तेरा अलग, मेरा अलग।"

प्रशांत—"मीना, तुझे अपने बाप की याद नहीं आती?"

मीना—"आती है। वह मुझे मारता-पीटता था। मैं कभी वहां सुखी नहीं रही।"

ऊषा—"क्या वह आदमी जिसके साथ यहां तक आई, तुझसे शादी नहीं करना चाहता था।"

मीना—"कैसी बात करती हो, बहन! वह अपनी जाति में शादी करेगा। हम लोगों के साथ उसका क्या मेल?"

प्रशांत—"क्यों वह तेरे साथ प्रेम नहीं करता था?"

मीना—"प्रेम अलग बात है। शादी अलग बात है।"

ऊषा ने कहा—यह आदिवासी अनपढ़ लड़की भी कितनी दूर तक सोचती और जानती है। वह इतना भी नहीं समझ पाई।

थोड़ी देर बाद बाबा से बातें हुईं। प्रशांत ने पूछा—"बाबाजी, आप इस घोर जंगल में क्यों रहते हैं?"

बाबा—"तुम्हारा क्या लेते हैं, भाई! हम चाहे जहां रहें। हम लोगों के लिए तुम्हारे शहर ही जंगल जैसे हैं।"

प्रशांत—"सो कैसे?"

बाबा—"वहां आदमी का मुखौटा पहने कैसे-कैसे बाघ, शेर, चीते, वन-शूकर घूमते फिरते हैं। यहां कम से कम जो कुछ है, वह अन्दर-बाहर साफ है। जो हमारे मित्र हैं, मित्र हैं। जो शत्रु हैं, शत्रु। मामला बिलकुल 'खड़ा और खुला खेल फरुखाबादी' है।"

ऊषा—"क्या इस मीना का अपने बाप को छोड़कर भाग आना अच्छा है?"

बाबा—"तुम भी अपने बाप को छोड़कर विलायत गई तो क्या अच्छा किया ?"

ऊषा—"मैं तो अच्छे के लिए ही गई थी।"

बाबा—"हर आदमी यही समझता है और अपने आपको समझाता रहता है कि जो कुछ वह करता है अच्छे के लिए ही करता है। पर आदमी के मामले में कोई अच्छाई पूरी अच्छाई नहीं होती, न कोई बुराई पूरी बुराई। सब मिला-जुला मामला है। वही जहर है, जान लेता है। दवा के भी काम में आता है, जिंदगी दे देता है—बुराई को मारकर। आदमी का हर काम ऐसा ही है।"

ऊषा—"क्या प्रेम भी ?"

बाबा—"हां, प्रेम भी।"

ऊषा—"सो कैसे ?"

बाबा—"देखो, वह आदमी जिसकी खोज में तुम लोग यहां तक आये हो, और जिसे मैं नहीं जानता, वह मीना से प्यार न करता तो वह इस जंगल तक क्यों आता—उसे यहां तक क्यों पहुंचाता ? और उसके बाद इस तरह बिना किसी आशा के लौट क्यों जाता।"

प्रशांत—"यह उसने अच्छा नहीं किया।"

बाबा—"क्योंकि तुम्हें उसका पता चाहिए। वह घर से भागा—शायद अच्छे के ही लिए। मीना के बाप ने उस पर आशा लगाये रखी। वह पैसे कमा के लाये और उसे शराब पीने की छूट दे। यह बुरा किया। हर काम के अच्छे-बुरे दोनों नतीजे हो सकते हैं। आपको मेरा पूर्व-जीवन मालूम है ? मैंने कौन-कौन से डाके नहीं डाले, या बदफैल नहीं किये। पर अब ? मैं समझता हूं जो छूट गया, सो छूट गया। वही अच्छा हुआ। अब मीना से मुझे कोई आशा नहीं। वह अपने मन से आई है। सेवा करनी है। भैरवी बन गई। बनी रहे। जिस दिन उसे फिर मीना बनना हो, बन जाये। लौट जाये। हमने बांधकर किसी को थोड़े ही रखा है।"

ऊषा—"इस तरह समाज नहीं चल सकता। हर इन्सान का दूसरे से कुछ लगाव, कुछ बंधन तो होता ही है।"

बाबा—"यह हमारी सामसयालो है। अन्त समय कोई किसी के

काम नहीं आता। सारे वंधन क्षणेक के हैं। आज हैं, कल नहीं हैं। सारे सांसारिक मोहमाया के संवंध स्वार्थ के हैं। किसी को मरते हुए देखकर दूसरा कभी अपने आप मरा है उसके लिए—फिर चाहे जितना निकट का वंधन हो। हमारे गुरु कहते थे—संवंध सिर्फ उस ऊपर वाले एक से सच्चा है। वाकी तो सव मक्कारी है। दिल को वहलाने का ख्याल अच्छा है।"

इस दार्शनिक चर्चा का कोई अन्त नहीं होता। पर वहां जंगल में रहने का कोई इन्तजाम नहीं था। प्रशांत और ऊपा वहां से चल पड़े।

लापता भाई और स्वामी की तलाश में वे चल पड़े। कोई सुराग नहीं मिल रहा था। महादेव नाम और वह चित्र खींचता था, इतनी जानकारी काफी नहीं थी। अव तक तो उसने और नाम रख लिया होगा। और चित्र कहीं वेच दिये होंगे, या फेंक दिये होंगे।

क्या फायदा है इस तरह आवारा वनकर घूमने-फिरने में ? कहीं कोई वंधन नहीं। कहीं कोई जिम्मेवारी नहीं। क्या यह भी कोई जिंदगी है ? प्रशांत और ऊपा यों सोचते थे। और उन्हें इस अंधी दौड़ में, हर गली एक वंद गली नजर आ रही थी।

इतने में वे उड़ीसा के उस समुद्र-तट के गांव में राव से मिले।

उसने खुशी से कहा—पता "लग गया है। अरविंद कलकत्ता में है।

प्रशांत और ऊपा ने पूछा—"यह कैसे पता लगा ?"

राव—"यह सव मत पूछिये। एच० आर० के हाथ-पैर वहुत लंबे-चौड़े हैं। वह अपराधी को दूर-दूर तक सजा दे सकते हैं तो इस भगोड़े आदमी को खोज निकालना कौन-सा मुश्किल काम है !"

कलकत्ते में कालीघाट के करीव एक गली। भक्तों का मेला। आ गयीं, आ गयीं—माताजी आ गयीं।

"कौन माताजी ?"

"वही जयादेवी। काली के अनन्य उपासक महात्मा दुर्गादास की चेली।"

एक भक्त—"दुर्गादासजी की उम्र दो सौ वरस से कम नहीं है।"

दूसरा भक्त—"मैंने स्वयं देखा है' मुर्शिदाबाद के पास महाश्मशान के पास पंचमुंडी स्थान पर उनका निवास है, अद्‌भुत अलौकिक चमत्कारी शक्ति है उनमें।"

तीसरा भक्त—"मेरी मनोकामना पूर्ण करो माई जी!"

चौथा—"बस अबकी बार सट्टे में हमारा नंबर लग जाये।"

कई भक्त अपनी-अपनी शक्ति के अनुसार फल-मिठाई, नारियल-फूलमालाएं लिए हुए उस ठेलमठेल में आगे बढ़ने की कोशिश में थे कि एक विदेशी गोरा भक्त—लंबा रेशमी कुर्ता पहने, गले में जबा के फूलों की माला डाले, कपाल पर कुंकुम-सिंदूर का बड़ा सा टीका धारण किये—सबसे आगे। उन्हें ठेलते हुए सेठ झिंगियानी। तुंदिल तनु, गंजे, टोपी धारण किये, एक हाथ में माला और धोती का एक पल्ला वासकोट की जेब में डाले। और उनके साथ क्या देख रहा हूं—वही महादेव (यानी सदानंद थालावलकर, यानी देवी सेन, यानी अरविंद मल्होत्रा—बाप रे बाप! एक ही जन्म में कितने पुनर्जन्म!) अब की बार उनकी हुलिया बदली हुई है—सिर घुटा हुआ, एक चोटी रखे, बदन में गंजी और एक जनेऊ, एक कान पर एक फूल खोंसा हुआ। आखों पर चश्मा काले रंग का, आधी कटी मूंछ और नीचे धोती पहने। यह रूप तो पहले कभी देखा ही नहीं था।

सब भक्तों की भीड़ को ठेलकर यह तीन—विदेशी, सेठजी और महादेव चक्करदार कई सीढ़ियां पार कर ऊपर पहुंचे। एक मृगासन। उस पर बिल्कुल नयी लकदक इंपोर्टेड केसरिया सिफोन की साड़ी पहने एक युवती। रूपवती। बड़ा-सा कुंकुम तिलक लगाये। बाल रूखे, पीठ पर छोड़े हुए। गले में रुद्राक्ष की माला। हाथों में रुद्राक्ष के कंकण, बांहों पर रुद्राक्ष। बस खिल-खिल हंसती जा रही है।

सेठ झिंगियानी—"अहाहाहा मां! कैसा आनंदमय रूप है। हमने सुना आप विलायत गई थीं?"

जया माता (मुस्कुराती हुई)—"भक्तों ने बुलाया था। पर उतनी दूर जाने का आदेश नहीं था। नेपाल तक गई थी सिर्फ।"

महादेव ने मूर्ख की तरह प्रश्न किया—"क्या रक्सौल होकर ट्रेन से

गई थीं ?"

जयमाला (दोहरी होती हुई, हंसी के मारे)—"रेल-वेल नहीं, हम हवाई जहाज़ से गये थे। गुरुजी के वहां भी इतने सारे भक्त हैं। वे कह रहे थे, और रुकिये। हमने ही मना कर दिया।"

सेठजी—"धन्य है, धन्य है!! आपके लिए क्या दुर्लभ है। आपसे मिलवाने आज यह डच आदमी लाया हूं। यू स्पीक हेंडरसन—दि मदर इज़ वेरी काइंड (माताजी परम कृपालु हैं)। शी विल आन्सर एवरी क्वेश्चन, कैन साल्व एनी प्राब्लेम (वह हर प्रश्न का उत्तर देती हैं, वह तुम्हारी किसी भी समस्या का समाधान कर देंगी।"

माताजी उत्तम अंग्रेजी, बंगला, हिंदी, गुजराती, उर्दू सब भाषाएं फर्राटे से बोलती थीं। आगे जो प्रश्नोत्तरी हुई—विदेशी और जयमाता के बीच वह बातें अंग्रेजी में हुईं—पर यहां उसका अनुवाद दे रहे हैं (पाठकों की सुविधा के लिए)

मां—"आपका नाम क्या है ?"

विदेशी—"राबर्ट हेंडरसन।"

मां—"क्या करते हैं ?"

विदेशी—"व्यापार था।"

मां—"अब ?"

विदेशी—"अब तो अध्यात्म और योग में मन लग गया है।"

मां—"क्यों आये हैं ?"

विदेशी—"आपकी शरण में आया हूं। मुझे सिद्धि चाहिए।"

"वह इतनी आसान नहीं है।"

"जानता हूं।"

"मन की तैयारी है ?"

"हां।"

"तन की ?"

"मतलब ?"

"नौजवान हो, बहुत संयम से रहना होगा। खाना-पीना ?"

"शाकाहारी हूं। शराब की बूंद को भी नहीं छूता।"

"उत्तम। विवाहित हो?"

"नहीं।"

"तो यह भी ठीक ही है। कितना समय दे सकते हो?"

"जितना आप कहें।"

"और धन?"

"जितना आप कहें।"

"अच्छा, एकांत में मिलना—हमारा उधर एक आश्रम है—सेठजी वहां ले आयेंगे। तब बातें होंगी। वैसे मैं जानती हूं, तुम्हारी समस्या क्या है?"

"क्या है?"

"मन की अशांति।"

"कारण?"

"राजनैतिक षड्यंत्र में तुम्हें फांसा गया था। अभी तक पूरी तरह से उस कलंक से बरी नहीं हो। पर गुरु की कृपा से क्या नहीं हो सकता?"

सेठजी—"धन्य हैं, धन्य हैं! मां सबके मन का जान लेती हैं। कितना प्रताप है!" (गद्गद होकर आंसू झरने लगते हैं।)

"और तुम? तुम्हारा क्या नाम है?"

"आशुतोष।"

"बंगाली हो?"

"नहीं! शिववाचक नाम है। सब शिव ही होगा।"

"आपकी कृपा मां!" (सेठजी बीच-बीच में भाव-विह्वल स्वर में)

"क्या कठिनाई है?"

"आप तो सब जानती हैं माता—दिल की बात।"

"तुम छिपना चाहते हो। वह व्यवस्था हो जायेगी। सेठजी इन्हें अपनी उस नंबर दो की हवेली में ले जाना। सेवा, टहल करेंगे।"

"इनसे अपना खाना बनाना वगैरह नहीं हो पायेगा।"

"कोई बात नहीं। वहां अनेक दासियां हैं। हम सभी भगवती के दास-दासी हैं।"

सेठजी बोले—"महामाता ! आप इनका उद्धार करो। जो भी खर्चा लगेगा, देने को तैयार हूं। इनके पास एक बहुत बड़ा राज है। उसके सहारे मेरा सारा बिजनेस ठीक हो जायेगा। आप तो जानती ही हैं, वे सब बातें यहां सबके सामने कहने की नहीं हैं। अमुक प्रदेश का वित्तमंत्री तो माताजी आपकी कृपा का प्यासा है। उसे एकाध बूंद कृपा-कटाक्ष से दे दीजिये। आगे हम सब संभाल लेंगे।"

माताजी फिर हंसी। "अपने यहाँ भजन में ले आना" इशारा करके वह और भक्तों की ओर मुड़ गयीं।

भीड़ बराबर बढ़ती जा रही थी। भक्तों का अंबार जुट रहा था। माताजी के लिए यह कुछ नया नहीं था। भक्तों में बड़े-बड़े स्मगलर, पुलिस के आफिसर, सब राजनैतिक दलों के दादा लोगों से लगाकर गरीब बेचारे भोले-भाले, साधनहीन, निम्न मध्य वर्ग के अशिक्षित जनसाधारण भी थे। धर्म नामक इस बन्या में सब बहे जा रहे थे—फूल, दिये, पत्ते, घासफूस, लकड़ी के टुकड़े। किसी का भेंट चढ़ावा वस्त्र अच्छी-बुरी सब तरह की चीजें…

यह धर्म ही था या अंध-विश्वास ? या दोनों मिश्रित थे ? मनुष्य का चमत्कारों के लिए आदिम कुतूहल, प्रत्याशा से भरा मन, श्रद्धा और आस्था से विकसित हृदय, प्रश्नहीन दिशा हारा दिमाग, स्वार्थ से लिपटा परमार्थ, संस्कारों से आवेष्ठित भाग्यवाद, नये रूप में प्रस्तुत था। क्या यह धर्म का व्यवसायीकरण था ? या निराश होकर व्यवसाय धर्म की ओर झुक रहा था।

यह एक विराट परस्पर-वंचना का क्रम था। नियतिवाद में एड़ी-चोटी तक डूबे भारतीय के लिये कोई नई बात नहीं थी। अब उसका आधुनिकीकरण हो गया था। अब उसमें जेट विमान से घूमने वाले साधु-संन्यासी, साथ में सुन्दरी शिष्याओं की मालिका लिये घूमने-वाले ब्रह्मचारी, और रात-दिन मठों की प्रापर्टी के लिए झगड़ा करनेवाले और हाई कोर्टों तक जाने वाले संन्यासी (?) शामिल हो गये थे। पाखंड का ऐसा रूपान्तरण कि सब उसे एकमात्र मुक्ति-मार्ग मानें, कभी और नहीं देखा गया था। सब प्रचार-माध्यमों का उपयोग !

हवेली नं० 2, जहां आशुतोष पहुंचा, क्या चीज थी ?

इसके पहले कि हम हवेली नं०2 तक जायें पहले 1983 में कलकत्ता को समझ लेना चाहिए। यह महानगर, जिसकी आबादी एक करोड़ के करीब पहुंचने जा रही है, एक विराट पैमाने पर चलनेवाली विरोधाभासों का मजमुआ था।

यहां एक ओर अट्टालिकाएं थी, जहां अजीर्ण के शिकार लोग खाते-खाते नहीं अघाते थे और उन्हीं के पैरों तले नाली में से जूठन निकालकर उसी पर पलने वाले भिखारी बालक थे। यहां एक-एक करोड़पति की छह-छह मोटरगाड़ियां थीं, जिनमें कई 'इम्पोर्टेड' थीं, तो दूसरी ओर वहां एक लाख रिक्शाचालक थे, जिनके अपने रिक्शे नहीं थे। यहां एक ओर कला और संस्कृति के नाम पर हजारों रुपये एक शाम या रात्रि में नष्ट कर देनेवाले मनचले थे तो दूसरी ओर भूखे मरने वाले मनस्वी कलाकार थे जो असामाजिक और अल्कोहोलिक बनकर मरे, चाहे ऋत्विक घटक हों या राजकमल चौधरी। यहां क्रांति के घरेलू उद्योग और पिछवाड़े में रसगुल्लों की तरह बम बनाने के अवैध कारखाने थे, तो शांति के नाम पर नोबल पुरस्कार प्राप्त करनेवाली मदर टेरेसा थीं। यहां साहित्य के नाम पर सस्ती वाहवाही के लिए या दुकानदारी चलाने के लिए तस्कर सेठ-चाटुकार-दलाल किस्म के लोग थे, तो ऐसे भी अक्खड़ और एकमुंहिये लोग थे जिन्होंने 'आन न जाने पावे, जान भले ही जावे' का व्रत निभाया। यह अरविंद और रवींद्र की भूमि थी, यह लार्ड क्लाइव और मीरजाफर और विदेशी तस्करों की लीलाभूमि भी रही। यहां काली कलकत्ते वाली नित्य बलि लेती हुई तीन आंखों में लपलपाती लाल जीभ चबाती, लपलपाते खड्ग को ऊपर उठाये सदा प्रस्तुत थी, तो यहीं सर्वाधिक शोषित, दीन-दुखियारी शरणार्थी स्त्रियों की अनाम पंक्तियां थीं। 1943 का अकाल, 1946 के बड़े रक्तपात, 1947 का विभाजन और उसके बाद अस्थिर सरकारों के बीच बराबर हुगली गंगासागर में मिलने बहती जाती रही। यहीं से नेताजी सन् 40 में जर्मनी भागे, यहीं से गांधी ने नोआखाली यात्रा शुरू की, यहीं से हजारों-हजारों नौजवान कालापानी और फांसी के तख्ते पर झूल गये—विप्लवीदल से नक्सलवादी तक। यहीं से पहले अखबार निकले,

यहीं सबसे पुराना 'जादूघर', हिंदुस्तान का सबसे पुराना वनस्पति उद्यान, चिड़ियाघर, राष्ट्रीय ग्रंथागार, पहली युनिवर्सिटी सब कुछ अभी तक चल रहे हैं—ट्राम और रिक्शे भी पुरानी दुनिया के खंडहर और भग्नावशेष—यहीं कभी शरचंद्र ने अपनी नायिकाओं को गंदी गलियों में नाचगान करते हुए देखा, यहीं से कभी हिरोशिम लेबदेफ ने अपना पहला थियेटर चलाया, यहीं न्यू थियेटर्स में कुन्दनलाल सहगल गाते-गाते मर गये, यहीं देवीप्रसाद रायचौधरी और रामकिंकर बैज ने अपने विराट् शिल्प बनाये, यहीं यामिनी राय पट की नई दुनिया खोजते रहे, यहीं वैज्ञानिकों ने लाजवंती में मानवी संवेदना देखी, यहीं···

और आज वही चौरंगी एक विराट मलबे के ढेर से आधी-दबी—चूंकि शैतान की आंत की तरह कभी खत्म न होने वाली पाताल रेलवे वहां बन रही है, अपने पुराने अंग्रेजी राज के जमाने के सपने मन में लिये, कोढ़ी बुढ़िया की तरह, फुटपाथ पर भीख मांग रही है। आज वही सब बड़े-बड़े स्थान एकदम मटियामेट हो रहे हैं, जैसे सबके ऊपर मटियाबुर्ज की छांह फैल गयी हो। यहीं पर जीवन अपनी मंथर गति से रेंग रहा है, सरक रहा है किसी आदिम ऊर्जा की गति से, किसी यंत्रचालित विराट अजदहे की गति से, पर इस ड्रैगन से अब कोई नहीं डरता। वह स्वयं एक दयनीय छिपकली बन गया है। उसी कलकत्ते के एक उपनगरीय हिस्से की एक पुरानी कोठी में इस जयमाता के तथाकथित 'न्यास' का आफिस है। इस कार्यालय में नये-नये चेलों को रख लिया जाता है। वे अलग-अलग काम में लाये जाते हैं। कुछ थोड़े समय के लिए उम्मीदवार के बतौर होते हैं। कुछ रईस वहां 'मन की शांति' खोजने आते हैं। कुछ काफी चतुर लोग माताजी की अनेक 'सेवाओं' में हाथ बंटाते हैं। देश-विदेश में माताजी के आश्रमों के जाल फैले हुए हैं। कई राजनैतिक कार्यकर्ता भी वहां 'मन की शांति, खोजने आते हैं। अनेक स्वयंसेविकाएं हैं, बड़ा अच्छा कैंटीन चलाया जाता है। एक 'एअर कंडीशन्ड' ध्यान-घर भी है। और क्या चाहिए? लोगों को दिखावे लिए जो दान आता है उससे एक होमियोपैथिक मुफ्त का अस्पताल चलाया जाता है। धार्मिक ग्रन्थों का ग्रंथालय-वाचनालय है। प्रौढ़ साक्षरों के पढ़ने की व्यवस्था है, अंधशाला है, अनाथ बालिकाओं

को सिलाई कढ़ाई सिखाई जाती है। और क्या-क्या परोपकार चाहिए? समाज फिर भी अकृतज्ञ है, इसे सिर्फ दिखावा कहता है।

*जयामाता की इस हवेली नं० 2 में* आशुतोष पहुंचा दिये गये। उनसे 'नाम के वास्ते' (अभिनव) कुछ फी ली गई। बाकी तो 'योगक्षेमं वहाम्यहे' —सबका खर्चा ऊपर वाला ही चलाता है। वह सचमुच ऊपर वाला होता है। कोई नहीं जानता कि महादान कहां से आता है। हां, इसमें 'ऊपर' वाले का ऊपरी महत्त्व कायम रखने के लिए कुछ लोगों को नीचे वाला होना ही पड़ता है। वे नीची जात के नहीं, गरीब तबके के दास-दासियां, भक्त-भक्तिनें हैं। वे नीचे ही रहती हैं। तभी ऊपर की कोठरियों में बड़े लोग अपना सब बड़ा-बड़ा काम कर सकते हैं। इसी में महात्तम है— 'छोटन को छोटो रखै, यही बड़ाई जान'!

आशुतोष से पूछा गया—"वह क्या-क्या कर सकता है?"

लिखना-पढ़ना, पढ़ाना, प्रचार, अनुवाद, पुस्तिकाओं का वितरण, मुद्रण-संपादन यह सब वह जानता है। कुछ चित्र भी बना लेता है। *आवश्यकता पड़ने पर पोस्टर, साइनबोर्ड रंगना। भाषण देना।* बड़े लोगों के साथ सेक्रेटरी के तौर पर काम करना, टंकन आदि-आदि।

"ठीक है, कल से आपकी ड्यूटी लगा दी जायेगी।" एक महिला ने उसे बता दिया। कमरा ठीक कर दिया गया।

आशुतोष का नया अज्ञात जीवन आरंभ हो गया।

## 17

अब आशुतोष ने अपना नाम गुजराती ढंग से पटेल रख लिया था। थोड़ी-बहुत गुजराती वह पढ़ लेता ही था। हवेली नं०2 में उसका परिचय जयामाता के प्रकाशन विभाग से संबद्ध विनोता से हुआ और वह बढ़ता

ही गया।

आशुतोष ने मन ही मन सोचा कि इस तरह अज्ञातवास में रहने के लिए यह स्थान बहुत सुरक्षित है। कलकत्ता के उपनगर में सब निम्न मध्यवित्त वर्ग के लोग रात-दिन दो जून भात पाने की चिंता में जुटे हुए हैं। किसे फुरसत है दूसरे का दुख दर्द जानने की?

विनीता से आशुतोष ने पूछा—"तुम जायामाता की सेविका कब से और क्यों बन गई?"

"दो साल से यहां हूं। और 'क्यों' का उत्तर तो भाग्य या भगवान के पास ही है।"

"नहीं, कुछ तो कारण हुआ होगा?"

"हां, मैं बाल-विधवा थी। सास-ससुर ने बहुत तंग किया! देवर की आंख मुझ पर थी। मैं उस तरह जिंदगी नहीं बिताना चाहती थी।"

"मां-बाप के घर क्यों नहीं गई?"

"वहां कौन बचा है मेरा?"

"क्यों?"

"पिता नेपाल चले गये। मां बचपन में ही मर गई। भाइयों ने बोझ समझकर उस अधेड़ रोगी से ब्याह दिया। जानते हुए भी कुएं में जिंदा धकेल दिया।"

"कितने दिन गृहस्थिन रही?"

"तीन साल निभाया। उसकी रात-दिन सेवा-टहल करती रही। वह किसी काम का बचा हुआ नहीं था। रात-दिन खांसता रहता। दमे का बीमार था। तपेदिक भी थी। मैंने बहुत पूजा-पाठ की। पर कुछ काम नहीं आये। वह बच नहीं सका।"

"बहुत दुख की बात है। पर कोई नौकरी ही कर लेती।"

"पढ़ाई अधूरे में छूट गई। दर्शन मेरा प्रिय विषय था। मैंने कई किताबें पढ़ी थीं। तभी इस जयामाता के एक भक्त ने मुझे माई का दर्शन कराया।"

"क्या उनकी कृपा नहीं हुई?"

"केवल गुरु-कृपा से क्या होता है दादा, पूर्वजन्म का संचित पुण्य भी

चाहिए।"

"तुम तो पहुँचे हुए साधु-साध्वी जैसी बातें करने लगी। क्या यम के पास से सत्यवान के प्राण सावित्री वापिस नहीं ले आई थी?"

"हाँ, वह पुराणों की कहानियाँ हैं। तब सत्य-युग था। अब बात दूसरी है। अब सारे संबंध स्वारथ के हो गये हैं। इस हाथ दे, उस हाथ ले। प्रेम दिखावा है।"

"तुम इतनी निराश क्यों हो, विनीता?"

"और नहीं तो क्या करूं? पता नहीं आयु के कितने सोपान अभी चढ़ने शेष हैं? पता नहीं कितनी दूर की यह मंजिल है।"

"क्या दुनिया सिर्फ अंधेरी ही अंधेरी है?"

"कहीं कोई रोशनी की किरण—एक हल्की-सी उसकी झलक भी मुझे दिखाई नहीं दे रही है।"

"क्या सारा दर्शन-शास्त्र पढ़कर तुमने यही हासिल किया?"

"छोड़ो भी, अपनी बताओ दादा, आप क्यों अथा के पास आये।"

आशुतोष थोड़ा झिझका। वह सच-सच बता नहीं सकता था। अपने को छिपाना चाहता था। पर यहां उसे लगा कि एक हृदय है जिसके सामने वह कुछ खुल सकता है। प्रतिदान की आशा है। यहां न 'एम॰आर॰' के लंबे-लंबे हाथ के खून रंगे नाखूनों का शिकंजा है, न ऊषा की वह भयावह छाया ही, जिनसे वह बचना चाहता है। उसने जीवन में अनेक पाप किये, पर कहीं तो परिताप का अवसर मिल सकेगा? कोई तो है जो उसे समझना चाहता है। आशुतोष थोड़ी देर मौन रहकर बताने लगा—

"विनीता, मेरी कहानी भी बहुत कुछ तुम्हारी जैसी है। तुम विधवा हो, मेरा विवाह नहीं हुआ (यहां वह झूठ बोल रहा था) बस इतना ही फर्क है।"

"क्या है तुम्हारे और मेरे जीवन में समानता?"

"तुम्हारी मां बचपन में मर गई। मेरी भी मां नहीं रही। पिता ने दूसरी शादी कर ली। सौतेली मां ने मुझे कभी प्यार नहीं दिया।"

"तो क्या तुम्हारा और कोई भाई नहीं था।"

"था, पर वह मुझसे एकदम उलटा था।"

ही गया ।

आशुतोष ने मन ही मन सोचा कि इस तरह अज्ञातवास में रहने के लिए यह स्थान बहुत सुरक्षित है । कलकत्ता के उपनगर में सब निम्न मध्यवित्त वर्ग के लोग रात-दिन दो जून भात पाने की चिंता में जुटे हुए हैं । किसे फुरसत है दूसरे का दुख दर्द जानने की ?

विनीता से आशुतोष ने पूछा—"तुम जायामाता की सेविका कब से और क्यों बन गई ?"

"दो साल से यहां हूं । और 'क्यों' का उत्तर तो भाग्य या भगवान के पास ही है ।"

"नहीं, कुछ तो कारण हुआ होगा ?"

"हां, मैं बाल-विधवा थी । सास-ससुर ने बहुत तंग किया ! देवर की आंख मुझ पर थी । मैं उस तरह ज़िंदगी नहीं बिताना चाहती थी ।"

"मां-बाप के घर क्यों नहीं गई ?"

"वहां कौन बचा है मेरा ?"

"क्यों ?"

"पिता नेपाल चले गये । मां बचपन में ही मर गई । भाइयों ने बोझ समझकर उस अधेड़ रोगी से ब्याह दिया । जानते हुए भी कुएं ज़िंदा धकेल दिया ।"

"कितने दिन गृहस्थिन रही ?"

"तीन साल निभाया । उसकी रात-दिन सेवा-टहल करती रही । किसी काम का बचा हुआ नहीं था । रात-दिन खांसता रहता । द बीमार था । तपेदिक भी थी । मैंने बहुत पूजा-पाठ की । पर कुछ नहीं आये । वह बच नहीं सका ।"

"बहुत दुख की बात है । पर कोई नौकरी ही कर लेती ।"

"पढ़ाई अधूरे में छूट गई । दर्शन मेरा प्रिय विषय था । किताबें पढ़ी थीं । तभी इस जयामाता के एक भक्त ने मुझे माई कराया ।"

"क्या उनकी कृपा नहीं हुई ?"

"केवल गुरु-कृपा से क्या होता है दादा, पूर्वजन्म का सं

चाहिए।"

"तुम तो पहुंचे हुए साधु-साध्वी जैसी बातें करने लगी। क्या यम के पास से सत्यवान के प्राण सावित्री वापिस नहीं ले आई थी?"

"हां, वह पुराणों की कहानियां हैं। तब सत्य-युग था। अब बात दूसरी है। अब सारे संबंध स्वारथ के हो गये हैं। इस हाथ दे, उस हाथ ले। प्रेम दिखावा है।"

"तुम इतनी निराश क्यों हो, विनीता?"

"और नहीं तो क्या करूं? पता नहीं आयु के कितने सोपान अभी चढ़ने शेष हैं? पता नहीं कितनी दूर की यह मंजिल है।"

"क्या दुनिया सिर्फ अंधेरी ही अंधेरी है?"

"कहीं कोई रोशनी की किरण—एक हलकी-सी उसकी झलक भी मुझे दिखाई नहीं दे रही है।"

"क्या सारा दर्शन-शास्त्र पढ़कर तुमने यही हासिल किया?"

"छोड़ो भी, अपनी बताओ दादा, आप क्यों जया के पास आये।"

आशुतोष थोड़ा झिझका। वह सच-सच बता नहीं सकता था। अपने को छिपाना चाहता था। पर यहां उसे लगा कि एक हृदय है जिसके सामने वह कुछ खुल सकता है। प्रतिदान की आशा है। यहां न 'एम०आर०' के लंबे-लंबे हाथ के खून रंगे नाखूनों का शिकंजा है, न ऊषा की वह भयावह छाया ही, जिनसे वह बचना चाहता है। उसने जीवन में अनेक पाप किये, पर कहीं तो परिताप का अवसर मिल सकेगा? कोई तो है जो उसे समझना चाहता है। आशुतोष थोड़ी देर मौन रहकर बताने लगा—

"विनीता, मेरी कहानी भी बहुत कुछ तुम्हारी जैसी है। तुम विधवा हो, मेरा विवाह नहीं हुआ (यहां वह झूठ बोल रहा था) बस इतना ही फर्क है।"

"क्या है तुम्हारे और मेरे जीवन में समानता?"

"तुम्हारी मां बचपन में मर गई। मेरी भी मां नहीं रही। पिता ने दूसरी शादी कर ली। सौतेली मा ने मुझे कभी प्यार नहीं दिया।"

"तो क्या तुम्हारा और कोई भाई नहीं था।"

"था, पर वह मुझसे एकदम उलटा था।"

"कैसे ?"

"वह मारपीट करता। घर पर आकर झूठ बोलता। सबकी सहानुभूति पाता। छोटा था न। मुझे सब दुरदुराते। सब चाहते थे कि मैं पढ़ाई पूरी करने से पहले ही कमाने लग जाऊं। यह कैसे संभव था ? मेरी किताबें वह चुराता। पन्ने फाड़ डालता मेरे होम-वर्क के। मेरे अपमानित होने में उसे बड़ा आनन्द मिलता था।"

"क्या पिता तुम्हारा पक्ष नहीं लेते थे।"

"नहीं, वे सदा छोटे भाई का ही पक्ष लेते थे।"

"तो घर के बाहर भी कोई तुम्हारा मित्र सहानुभूति देने वाला नहीं था—पास-पड़ोस में, स्कूल-कालेज में, रिश्ते-बिरादरी में।"

"नहीं, कोई मुझे समझने की कोशिश ही नहीं कर रहा था।"

"यों शुरू होती है एक बे पहिचाने बने रहने की दुनिया। एक तरह से सब चीजों से अलगाव। एक ऐसा बोध कि हम सबसे कटे हुए हैं। कहीं कोई छोटा-सा भी, हलका-सा भी संबंधों का तंतु शेष नहीं है। नित्य प्रताड़ित, अपमानित, वंचित, एक कुचली हुई, तुड़मुड़ाई हुई, आधी-अधूरी जिंदगी में हम जीते रहते हैं। कुछ हैं जो समझौता कर लेते हैं। अर्द्ध-सत्य को ही पूरा सत्य मान लेते हैं। यह धोखा बड़े पैमाने पर लोगों को हो जाता है। जानते हो विनीता, बड़े-बड़े लोगों को यह मुगालता रहता है। बड़े-बड़े राष्ट्रों को हो जाता है।"

"सो कैसे ?"

"गांधी समझते रहे कि सब हिन्दू-मुसलमान, हरिजन-सवर्ण उनके साथ हैं। पर सच्चाई यह थी कि मुसलमान जिन्ना के साथ थे। हरिजन आंबेडकर के साथ। हिन्दू सावरकर और गोडसे के साथ। गांधी के साथ शेष दुनिया थी, सिर्फ उनका बड़ा बेटा ही उनके साथ नहीं था। यह कैसा चक्कर है। जो भगवान से लगाव लगा लेते हैं, उनसे दुनिया छूट जाती है, जो दुनिया से लगाव रखते हैं, उनकी तो दीन और दुनिया दोनों छूट जाती है…।"

"तुम अपनी बात करते-करते बड़े सवालों में उलझ गये। क्या इतना ही काफी है कि घर में सुख नहीं मिला तो घर से भागते फिरे ?

"कीट्स की कविता है :

एवर लेट दि फैंसी रोव
प्लेजर नेवर इज एट होम !"
(कल्पना को मुक्त उड़ने दो
घर में कभी भी सुख नहीं है
या सुख कभी घर में नहीं रहता)

"यह भागम भाग सब अच्छे कवियों में होती है।"

"तुम्हें कविता पसन्द है ?"

"क्या तुम्हें कविता अच्छी लगती है ?"

"किसे अच्छी नहीं लगती।" शैली ने कहा—"वी लोक फार व्हॅट इज नॉट।" (जो नहीं है उसी के पीछे हम लगे हैं)। रवीन्द्रनाथ का 'जाहा चाई ताहा भूल करे चाई, जाहा पाई ताहा चाई ना' यही तो है। महादेवी वर्मा ने 'पीड़ा में तुमको ढूंढा, तुझमें ढूंढूंगी पीड़ा' कहा था।

"तुम हिन्दी कविता पढ़ते हो ?"

"हिन्दी ही क्यों, जिस भाषा में भी अच्छी कविता हो, मैं पढ़ता हूं। मनुष्य एक चिर-विरही प्राणी है। संस्कृत में तो कालिदास ने पूरा 'मेघदूत' विरही यक्ष की भावनाओं को लेकर लिख डाला। कल्हण ने कहा है—

कण्ठग्रहे शिथिलता गमिते कथं चि—
द्यो मन्यते मरणमेव सुखाम्युपायम्
गच्छन्स एष न बलाद्विघृतो युवाभ्या—
मित्युज्झिते भुजलते वलयैरिवास्या।"

"इसका अर्थ क्या हुआ ? मैं इतनी संस्कृत नहीं जानती।"

"विरहिणी दुर्बल हो गयी है और गहने ढीले हो गये हैं। यह स्वाभाविक ही है। कंगन हाथ से उतर गये। जो प्रिय कंठालिंगन के किसी प्रकार से शिथिल होने पर मरण को ही सुख मानता था, वही प्रिय प्रवास में चला गया और ये भुजाएं उन्हें रोक नहीं पाईं। इसलिए मानो रूठकर वलयों ने या कंगनों ने भुजाओं का साथ छोड़ दिया है।"

"आप भी कैसी-कैसी बातें करते हैं ? इससे अकेलापन कम होने के बदले बढ़ता है। यह दुख को कम करने वाली बात नहीं है। मैं चलूं…।"

"आदमी अकेला रहना चाहता है। इसी में उसे सुख लगता है। पर वह अकेला रह ही नहीं सकता। बचपन में उसे परिवार, कलत्र, मित्र बड़ा होने पर पत्नी-पति, बच्चे और कितने-कितने लोग घेरे रहते हैं। वह निस्संग रह ही नहीं पाता, और सोचता रहता है कि निस्संगता ही अन्तिम सुख है।

यही अकेलापन, जिसे वह सुख की कुंजी मानता है, उसके दुख की जड़ है।

क्या वह इसलिए दुखी है कि उसे भारी दुनिया में उसके मालिक, स्वामी, माता-पिता, आत्मीय-स्वजन सबने निराश्रित छोड़ दिया है? क्या वह इस अलगाव से दुखी है?

पर पहले तो मनुष्य जंगल में, गुफाओं में रहता था। उसने बनाया हुआ कोई सर्वशक्तिमान, सर्वकृपावान ईश्वर भी नहीं था। तब वह क्या अकेलेपन के दर्द से छटपटाता नहीं था?

नहीं, वह इसलिए दुखी था कि वह अपने आपको पहचानता नहीं था। उसकी पुकार थी—कौन हूं मैं? कौन हो तुम? क्या हूं मैं?

'क स्त्वम्, कोऽहम्, क्वाति···'

उसने बहुत दर्शन और चिंतन के जाल बुने। काफी उधेड़-बुन की। तर्क के बारीक रेशों में वह उलझ गया। 'फैली अलकें ज्यों तर्क जाल।' उसे समाधान नहीं मिला। वह यह 'अपनापन' पूरी तरह पहचान पाया। बीच-बीच में एक झलक मिलती। वह मिथ्याभास लगता। मृग-मरीचिका की तरह। जैसे उसने रस्सी को ही सांप मान लिया हो। सीप को ही चांदी समझ लिया हो।

वह भटकता रहा, भटकता रहा।

उसके हाथ में एक दिन एक वस्तु आई—'विज्ञान!'

उसने समझ लिया कि अब वह अकेला नहीं रहेगा। सारे पंच महाभूतों पर वह विजय पा सकता है। उसके हाथ में अपरिसीम अनन्त शक्ति है।

वह उस शक्ति के मद में, उस नयी खोज के अहंकार में कई वर्षों और सदियों तक डूबा रहा। अब इन्सान बिल्कुल आश्वस्त हो गया कि

उसने अपने आपको पूरी तरह जान लिया है। बाहरी दुनिया पर उसका पूरा नियंत्रण है।

पर वह सच नहीं था।

उसी के बनाये हुए समाज, के अर्थव्यवस्था के, राजनीति के नियम, कानून, बंधन उसे पिंजरे जैसे लगने लगे। यह बेड़ियां उसी ने बनाई थीं। उसे कभी भी अनुमान था कि औरों के लिये बनाये ये बुद्धि के भेद, ये भूलभुलैयाएं, कठिन पहेलियां, उसी को अपनी जकड़ में बांध लेंगी। उसी का पालतू विज्ञान अब बड़ा होकर, खूंखार बना हुआ, उसी को आंखें दिखा रहा है। उसी पर आंखें तरेर रहा है। अब वह क्या करे? वह भस्मासुर वाली अवस्थायें हैं। मोहिनी ने उसे नाच सिखाया—और सहज भाव से उसने अपने सिर पर ही हाथ रख दिया। वही पूरी तरह भस्म हो गया।

मनुष्य का यह आत्म-प्रवंचना का नाटक लाखों वर्षों से चला आ रहा है। सृष्टि के आरंभ से। शायद सृष्टि के अन्त तक यों ही चलता रहेगा?

धर्म ने कहा—देखो, तुम इधर-उधर मत भटको। हमें सब पता-ठिकाना मालूम है। हम रास्ना बताते हैं—हमारे साथ चलो।

आदमी धर्म के साथ चलने लगा। किसी ने कहा अन्तिम सत्य एक है। किमी ने दो, किसी ने तीन। किसी ने अनेक देवता बताये। पर व चीज जिसे वह देवता मान बैठा वह पत्थर का बुत निकला। वह बोल नहीं था, चलता नहीं था। एक ही जगह स्थिर था। चाहे वह शिव या काबा, या सलीब। वह किताब हो या नाम, तस्बीह का मन का या 'अनहद नाम'—वह परिभाषा से परे था इसलिए वहां भी उ पहचान उसे नहीं मिली। वह खोया-खोया सा फिर लौट आया।

जैसे पहाड़ की बर्फ़ानी चोटी पर चढ़ने के लिए जाने पर्वतारोही निराश होकर लौटे।

विज्ञान नहीं, धर्म नहीं—फिर कहां है उसकी पहचान?

क्या वह उस पत्र की तरह है जो 'डेड लेटर आफिस' पहुंच चूंकि उस पर मुहर लगी है—'ठिकाना सही नहीं।' या 'इस आदमी यहां नहीं रहता।' या 'पता अधूरा है।'

कारण कुछ भी हो, वह लापता है।

बिन पहचान, बिन चेहरे का व्यक्ति, कटी पतंग-सा, झरते पत्ते-सा, गिरते हुए नक्षत्र-सा, ज्वालामुखी के मुंह से लुढ़कते जाने वाले जलते पत्थर-सा, बेतरतीब बिजली-सा, अप्रत्याशित बाढ़ या आग-सा, यहां दर-दर भटकता रहा है। वह अश्वत्थामा है ? या वह 'वाइरिंग ज्यू' है ? वह यायावर नक्षत्र में जन्मा निरुद्देश्य पाथ है ? चिर-प्रवासी है ? क्या है वह—अपने को नहीं जानता, अपने रहबर को नहीं पहचानता, अपने आखिरी ठिकाने में नावाकिफ एक पेंडुलम मात्र है···

उससे दिशा-काल का बोध शायद औरों को मिल पाता है पर वह खुद दोनों से अन्धा है, बेखबर है। इसलिए चल रहा है कि किसी ने कहीं अरबों वर्ष पहले चाभी भर दी थी और अभी तक चल रहा है। इसलिए बोल रहा है कि आरंभ में वह एक शब्द था, नाद था, 'कुन' था, अक्षर था—कुछ ऐसा था जो पहचान में नहीं आता था।

अन्धों की लिपि 'ब्रेल' आंखवालों के लिए क्या है ?

जापानी चित्राक्षर जापानी न जाननेवालों के लिए क्या है ?

सभी धर्मों के मुख्य मंत्र, जो वह भाषा नहीं जानते उनके लिए क्या है—निरे निनाद या शब्द ? ॐ स्वाहा, मणिपद्मे हुं, णमो अरिहन्ताणो, इकनाम ओंकार, आमीन···

यह प्रणव और उद्गीथ और महामंत्र और दैवी शब्द क्या है ?

मनुष्य की पहचान की पहली सीढ़ी या मनुष्य के अज्ञान का अहसास ?

यह सब शायरी लिखने पर भी आशुतोष को चैन नहीं था ? वह अरविंद मलहोत्रा, देवीसिंह बनकर भी चैन पा सका ? वह सदानन्द माला-बखकर बनकर भी कहां सुखी बना ? वह महादेव शर्मा के रूप में निर-असन्तुष्ट बना रहा। अब वह आशुतोष पटेल बनकर क्या अपनी अगली पहचान पा सकेगा ?

'अपने आपको जानो ! 'नो दाई सेल्फ'—उपनिषद् और बाइबिल बहुत चीखते रहे। मगर आदमी है कि वह बराबर अपने आपसे भागता फिर रहा है। इसी से वह कहीं नहीं है। और सभी कहीं अपने को

अटकाये-अटकाये फिर रहा है।

अभी तो जयामाता ने उसे विनीता नामक एक दर्पण दिया है। देख, उसमें अपनी तस्वीर देख!

# 19

रूपा और प्रशांत ने उड़ीसा के उस छोटे से सागर-तट के गांव से जाने वाली बसों का पता चलाया। मीना ने जिस शाम के बस की बात की थी, वह तो कलकत्ता की ओर ही जाने वाली थी। और कोई नहीं।

कलकत्ते के पास जिस जगह वह रुकती थी, वहां दोनों उस बस से आये। बस कंडक्टर से पता तो चला कि कुछ महीनों पहले एक दाढ़ी बढ़ाया युवक उस बस से गया जरूर था, और उसके साथ में बहुत से चित्र भी थे। पर उससे अधिक कोई और नहीं जानता था। टिकिट उसने बस के चलने से पहले ही खरीदा था। रुपया उसके पास बहुत रहा होगा, चूंकि सौ का नोट उसने निकाला। नाम उसने अपना लिखाया नहीं था।

यहां तक तो खोज ठीक थी।

अब उस दक्षिण कलकत्ता के उपनगर में रूपा और प्रशांत ने होटलों की खोज शुरू की। यहां तक पता लगा कि एक महाकाली होटल में ऐसा एक युवक बस से आया था। और सात दिन ठहरा था।

ये भी उस होटल में ठहर गये।

होटल के बैरा से पता चला कि आदमी दिन-भर सोता रहता था। काम कुछ करता नहीं था। हां, जिस दिन वह यहां से चला गया तो सामान उसके पास बहुत कम था, और उसने दाढ़ी मूंछ सब कटवा दी थी। सिर भी घुटवा लिया था।

"क्या वह बहुत पीता था ?"

"नहीं, ऐसी भी कोई बात नहीं।"

"शाम को जागकर बाहर कहीं चला जाता था। देर रात बीते वापिस होटल पर आता था।"

"उसके साथ के सामान का उसने क्या किया ?"

"उसने किसी को बेच-बाच दिया ?"

"बहुत से कागज और बड़े-बड़े कैनवास थे, जिन पर तस्वीरें बनी हुई थी।"

झाड़ू देने वाले नौकर ने कहा—"हमारे तो समझ में नहीं आती थी, कैसी तस्वीरें थी। बहुत-सा पानी जमा हो ऐसे सीन थे। कहीं बदल थे। कहीं मोर। कहीं कोई बड़ी-बड़ी आखों वाली लड़की। उसकी टोकनी में मछली ही मछली।"

"ऐसी तस्वीरें इस कुग्राम में खरीदने वाला कौन होगा ?"

"कबाड़ी को बेच दी होगी उसने।"

खोजते-खोजते एक गली की नुक्कड़ पर एक मुसलमान पेंटर साहब मिले। पेंटर तो क्या थे, फोटो भी खींचते थे। उनकी दुकान में एक रंगीन पर्दा भी टंगा था। और साइनबोर्ड वगैरह रंगाई-पुताई का काम भी करते थे। अकेले आदमी जान पड़ते थे। दुकान में एक छोटा-सा बच्चा नौकर रखा हुआ था। उसे 'दाम' कहकर पुकारते थे। बहुत दिनों के बाद कोई ग्राहक आया देखकर पेंटर साहब खुश हुए। बातचीत चालू रखने के लिए कुछ काम का बहाना जरूरी ही था। प्रधान ने कहा—'जमाल मियां पेंटर आप ही हैं ?"

"जी, हां।"

"हम पासपोर्ट साइज फोटो खिचवाना चाहते हैं।"

"बहुत ठीक है।"

क्या दोनों के खिचवायेंगे ? एक साथ खिचवा लीजिये। जोड़ा बहुत अच्छा बनेगा।"

दोनों हंसे। ऊषा ने कहा—"मैं इनकी बीवी नहीं हूं, भाभी हूं।"

"मुआफ़ कीजिये। दाम क्या लेते हैं, साहब ! आजकल फोटो का

मैटीरिअल बड़ा महंगा हो गया है। इस गांव में कौन फोटो खिचवाता है और किसे आर्ट की पड़ी है!"

"फिर भी?"

"यही जल्दी होगी तो तीन कापी के पच्चीस लेंगे।"

"ठीक है।"

जमाल मियां अपना ही दुखड़ा सुनाने लगे। वे बांगला देश से आये बिहारी मुसलमान थे। पाकिस्तान जा भी नहीं सकते थे, बांगला देश वे वापिस जा नहीं सकते थे। बिहारी होने से उर्दू बोल लेते थे। बंगाली मुसलमानों से अलग थे। गांव में एक मस्जिद थी और उसके पास ही एक मुस्लिम होटल। वहीं खाते-पीते थे। वहीं जाकर उर्दूअखबार भी पढ़ लेते थे।

प्रशांत अब मुख्य मुद्दे की ओर आया—"आपके पास एक माह पहले कोई आर्टिस्ट अपनी तस्वीरें बेच गया था क्या?"

"अजी, तस्वीरें क्या थीं? हमारी तो समझ में कुछ आया नहीं। नीला-सफेद, काला कुछ धब्बों से भरा मामला था। वह उन्हें दरिया कहता था। दरिया-वरिया कुछ नहीं था। उसके दिल को बहलाने के लिए सिर्फ खयाल था! आदमी दरियादिल था। वह कैनवास बड़े सस्ते में फेंक गया। लगता था जैसे उस पर बोझ थे। किसी तरह उनसे छुट्टी करना चाहता था।"

"नाम क्या था उसका?"

"माधव-माधव कहता था। तस्वीरों पर 'एम' बना हुआ है।"

"वे तस्वीरें आपके पास हैं?"

"कुछ रखी हुई हैं। कुछ तो हमने सफेद पेंट लगवाकर बेच भी दीं। कुछ के पोस्टर बना डाले। वह सर्कस कंपनी वाले आये थे। चाहते थे, तो कई पर कागज चिपकवा के दे दिए।"

बची हुई बड़ी-बड़ी चार-पांच तस्वीरें थीं। वे धूलखाती कहीं मियानी में पड़ी थीं।

बहुत इसरार करने पर जमाल मियां उन्हें ले आये। दास एक-एक पर से धूल झाड़ता-पोंछता जाता। दुकान में रखने को जगह भी नहीं थी।

ऊपा को उनमें से तीन बहुत अच्छी लगीं। एक में समुद्र का किनारा था लम्बा-सा, उस पर सीपें, शंख, घोंघे, सांप बने हुए थे। ऊपर उठती हुई लहरें, दूर तक नीला विस्तार। बहुत दूर पर एक छोटा-सा पक्षी जैसा दिखने वाला जहाज। आसमान से उतरती हुई जगन्नाथ की मूर्ति…गोल-गोल चेहरा, गोल-गोल आंखें। बस, इसी तस्वीर में वही बड़ी-बड़ी फटी-सी आंखों वाली काली सांवली लड़की थी। ऊपा ने देखा कि उसके चेहरे और मीना के चेहरे में बड़ा साम्य है। उसने बाएं हाथ में एक बड़ी-सी टोकरी ली है, जिसमें मछलियां ही मछलियां हैं। मछलियों में और मीना की आंखों में साम्य है। पीछे बैकग्राउंड में समुन्दर है और उसमें जाल बिछाता एक छरहरा सिलहूट है। ऊपा को वह मीना का बाप लगा। तस्वीर एक लाल सिंदूर वाले त्रिशूल के पास बैठे जटाधारी आंखें मूंदे गेरुआ पहने बाबा की थी। उसके बैठने के आसन पर कई तरह के आसन बने हुए थे—बल्कि तांत्रिक भाषा में 'यन्त्र'। बाबा के पीछे एक दम अंधेरा था। कहीं से कोई खोपड़ी टंग रही थी। भयानक विद्रूप चित्र था। पर ऊपा ने हुज्जत करके वे तीनों कैनवास जमाल मियां के पास से रखवा लिये। वे सौ रुपये के नोट से ही खुश थे। बोले, "वह दस-दस रुपये में दे गया था। पागल था या दुनिया का सताया हुआ। पता नहीं क्या गड़बड़ सवार था। अव्वल तो ऐसी वाहियात तस्वीरें बनाई ही क्यों? और बनाई तो फिर बेच क्यों डालीं?"

यहां तक तो अरविंद की खोज प्रशांत ने की थी।

इससे आगे?

तभी कलकत्ते में उनकी राव से मुलाकात हो गयी। उन्हें पता चल गया था कि एक नया चेला जयामाता के चक्कर में आ गया है। सेठ झंगियानी सिंधी थे। और उनका इन स्मगलरों की अन्तर्राष्ट्रीय गैंग से यानी अप्रत्यक्ष रूप से एच. आर. से संबंध था। विदेशी जो इच तथा कथित दार्शनिक वहां आया था। वह भी 'डोप' (चरस गांजा-कोकीन) का ही 'कैरियर' था। नेपाल से आया था।

मध्यप्रदेश में मंदसौर से लगाकर बैंकाक, हांगकांग, काठमांडो, काबुल तक इन 'हथीरों' के खरीद-फरोख्त करने वालों के जाल फैले थे।

मालवे की भूमि की थोड़ी-सी अफीम दूर-दूर तक जाकर दस हज़ार गुना दामों की 'हेरॉइन' बन जाती थी। दुनिया बिकती है, बेचने वाला चाहिए। पुरानी कहावत 'दुनिया झुकती है, झुकाने वाला चाहिए, यह नया रूप था।

आशुतोष पटेल को पता ही नहीं था कि उसकी मूल पहचान उसके पीछे-पीछे साये की तरह मंडरा रही है। हम अपने आपसे कहां तक भागकर जा सकते हैं?

# 20

"क्या हमारी पहचान खो जाने का कारण हमारा अतिशय मातृ-वात्सल्य है?" आशुतोष अपनी डायरी में लिखता जा रहा था, कि विनीता ने वह हिस्सा पढ़ लिया।

वह बोली—"आपकी मां सौतेली है, इसलिए आप सब माताओं पर लांछन लगा रहे हैं। वे पालती हैं—बड़ा करती हैं। वे बच्चों को एक खास काट का बनाती हैं, जैसा वे चाहती हैं। पर वे पहचान मिटाती नहीं हैं।"

आशुतोष ने कहा—"रवीन्द्रनाथ ने ही लिखा था—मुझे मनुष्य बनाओ, हे बंगजननी, बंगाली बनाकर मत रखो। और रवीन्द्रनाथ ने लिखा—

'अतल कालो स्नेहेर माझे डुबिये आमाय स्निग्ध करो,—मुझे गहरे काले स्नेह में डुबोकर हे श्यामा माता स्निग्ध करो!"

विनीता—"नहीं, नहीं, रवीन्द्रनाथ की चित्रा, श्यामा नहीं है—वह नाम वर्णामयी है, विचित्रा है, उर्वशी है।"

आशुतोष—"देखो, 'तोमार राते मिलाय आमार जीवन सांझेर रश्मि रेखा।" (तुम्हारी रात में मेरे जीवन संध्या की रश्मि-रेखा मिला दो)

यह भी उन्होंने ही लिखा है। अंतिम दिनों में वे श्यामली में रहने लगे। संथाली लड़की के कितने चित्र उन्होंने बनाये। शक्ति-पूजक वे नहीं थे, पर वे भी एक जगह कविता में लिखते हैं—

डान् हाते तोर खड्गज्वले
बां हाते करे शंकाहरण
दुई नयने स्नेहेर हांसी
ललाट नेत्र आगुन बरण

विनीता—"बंगाली के लिए मां 'वंदे-मातरम्' वाली 'सरकरवाले', आयुधों से सज्जित दुर्गा ही है।"

आशुतोष—"अंतिम दिनों में रवीन्द्रनाथ रुद्रताण्डव नृत्यरत शिव का आवाहन करने लगे थे। बहुत पहले उन्होंने कहा था—

"कालीरे' रहे बक्षे धरी शुभ्र महाकाल' (परिशेष, 1927) काली को वक्ष में रखे हुए हैं शुभ्र महाकाल। इसी से मैं कहता हूं कि इस घेरे से वह छूट नहीं सके। वही माया है, वही कवींद्र की छलनामयी है।"

विनीता—"जयामाता कहती हैं कि काली और काल दो अलग-अलग चीजें नहीं हैं। वे एक ही रूप के दो नाम हैं।"

आशुतोष ने कहा—"ठीक ही तो कहा है। सारे मर्मी, रहस्यवादी उसी श्याम-श्यामा के रंग में सने हैं। कृष्ण और काली असल में एक ही हैं। मन जो मां को बुलाने जाता है वह कहां रह पाता था। वह उसी रंग में खो जाता है।"

मा बोले डाकिस ना रे मन
मा के कोथा पाबे भाई
थाकते एशे दिता देखा
सर्व नाशी बेंचे नाई (रामप्रसाद)

जो सबका संहार करनेवाली है। वह कैसे बची रहेगी ? वह किसे बचायेगी ? शायद संहार हो जाना ही उसकी दृष्टि में बचा है।'

विनीता—"आपने अभिज्ञा की सही परिभाषा दे दी। जब तक यह, तू, मैं, वह, यह सब अलग-अलग पहचाने जाने वाले अभिधान हैं, तब तक उनमें वह परमतत्त्व कहां है ? वह पराशक्ति तो सर्वव्यापिनी है। इसीलिए

उसने छूटते ही पूछा—"आप अरविंद मलहोत्रा को जानते हैं ?"

"नहीं।", आशुतोष ने दृढ़ भाव से कहा।

"आप जरूर जानते हैं।"

"आपको कोई धोखा हुआ है। मैं आशुतोष पटेल हूं और इस नाम के आदमी से मेरा कोई संबंध नहीं।"

"जाने दीजिये। आप देवीसेन को जानते हैं ?"

"नहीं, बिल्कुल नहीं।"

"आप सदानंद बालावलकर को जानते हैं ?"

"यह सब आप क्यों पूछकर मेरा समय नष्ट कर रहे हैं। मैं इनमें से किसी एक को नहीं जानता।"

अब उस आगंतुक ने जैसे आखिरी तुरुप का पत्ता होता है वैसा एक नाम लिया—"आप एच. आर. को जरूर जानते हैं ?"

आशुतोष चुप हो गया, उसे लगा कि कोई न कोई गहरा खोजी यहां आ पहुंचा है। इसमें बचाव संभव नहीं। फिर भी जैसे डूबता तिनके का सहारा लेता है, वैसे मन ही मन उसने सोचा कि इस स्थिति से भी भाग निकला जाये। आशुतोष ने कहा—'क्या आपको सेठ झगियानी ने भेजा है!'

"हां। वे एच. आर. को जानते हैं।"

"मैं तो जयमाता के आश्रम में प्रकाशन का काम देखने के लिए आया अन्तेवासी हूं। आप मुझे तंग मत कीजिये।"

इतने में विनीता आ गई। आशुतोष ने कहा—"कैसे-कैसे लोग कहां-कहां के नाम लेकर चले आते हैं। सेठ झगियानी भी बड़े ही लोक संग्रही प्राणी हैं। इस पागल को भेज दिया। यह लापता लोगों की खोज करता-करता यहां आ पहुंचा। भाई मेरे, मैं इसे ठीक से समझा रहा हूं कि मेरा अता-पता यह है—मेरा कार्ड ले जायें, चाहें तो। मैं यहां आध्यात्मिक शांति के लिए आया हूं और आप मेरे पीछे पड़े हुए हैं जैसे कोई मैं 'क्रिमिनल' हूं।"

वह अजनबी आदमी हंसा। उसने आस्करवाइल्ड का एक वाक्य कहा—"एवरी सेंट हैज ए पास्ट, एवरी सिनर हैज ए फ्यूचर।" (

संत का एक भूतकाल होता है, हर पापी का एक भविष्यत्)

आशुतोष कहने ही जा रहा था कि मानों कोई दोनों हो तो ?

इतने में वह आगंतुक विदा लेकर चला गया।

# 21

दूसरे दिन सवेरे विनीता आशुतोष को नाश्ते पर चलने के लिए बुलाने गई तो देखा—कमरा खाली है। केवल एक चिट्ठी वहां रखी थी और उसके नीचे एक डायरी। चिट्ठी में लिखा था—"विनीता, तुम्हें मेरे लिखने में रस था। इस चिट्ठी को अपने पास रखना। यह मेरी पहचान नहीं है, न निशानी है। यह एक सर्वसंग-परित्याग की मंजिल के पथिक का बयान है। टुकड़ों-टुकड़ों में, अटपटा और बेतरतीब। पर शायद इसमें तुम आज के आदमी का चेहरा पहचान सको। मेरी खोज मत करना। आशुतोष ने आत्महत्या कर ली है। और उसका कोई नामोनिशां आसानी से मिलनेवाला नहीं है।"

आत्महत्या वाली बात से विनीता डर गई। चिट्ठी और डायरी तो उसने अपने झोले में छिपा ली और हवेली नं०2 में हल्ला मचवा दिया कि आशुतोष का कमरा खाली है। वह कहीं चला गया है। एक ही खुशी की बात थी कि उसने आशुतोष का एक फोटो ले लिया था अपने कैमरे से।

बहुत पूछताछ की गई। दरवान ने कहा—रात को तो कोई आदमी वहां से गया नहीं। और उसका सामान था ही क्या। दो जोड़ी कपड़े। वे तो ज्यों के त्यों हैं। हो सकता है, वह किसी दोस्त से मिलने गया हो।

जयामाता को खबर करा दी गई। उन्होंने सेठ झंगियानी को खबर दी। सेठ ने 'एच० आर०' से कहा। 'एच० आर०' ने ऊषा और प्रशान्त को बुलाया—"तुमने अधीरता से एक आदमी को, जो अपनी चंगुल मे पूरी

तरह आ चुका था, इस तरह से चले जाने दिया। यह ठीक नहीं किया। इतने बड़े कलकत्ते में, इतनी सारी गाड़ियाँ छूटती हैं, इतनी बसें जाती हैं। वह फिर फरार हो गया। उसे जान पड़ता है ज़िंदगी में कोई मोह बचा नहीं है। वह आत्महत्या भी कर सकता है। कहीं किसी तालाब में कूदकर डूब गया होगा। या किसी पटरी पर किसी रेल के नीचे आ गया होगा। या उसने···"

सब बहुत दुखी हुए। कई महीने बीत गये।

अपने-अपने काम में सब लग गये। ऊषा ने वे चित्र संभालकर रखे थे। वह पुनः अपने पिता के पास चली गयी। प्रभात दिल्ली में फिर अपना बिज़िनेस देखने लग गया। मीना अघोर भैरव के पास ही थी। उसका बाप शायद वहीं मछुआरे का धंधा करता था और शराब में अपनी ज़िंदगी की आखिरी बूँदें निचुड़कर एक तरह से धीमे-धीमे आत्महत्या कर रहा था। मीला ने शादी कर ली थी दुबारा। लीला उसके साथ ही रोज़ मिलती थी। ज़िंदगी बदस्तूर चली जा रही थी।

'एच॰ आर॰' के लिए राव महत्त्वपूर्ण था। शेष सब बेकार थे। सेठ झंगियानी महत्त्वपूर्ण था। 'जयामाना' उपयोगी थी। ये सब 'कांटैक्ट्स' थे, 'कनेक्शन' थे। औरों से क्या लेना-देना था। 'एच॰ आर॰' एक महायंत्र की तरह था। सत्ता और सम्पत्ति और भ्रष्टाचार का मिला-जुला आटोमैटान। एक 'रोबो'। उसकी बला से कोई जिये या मरे?

आशुतोष और विनीता के क्या कोमल भावनापूर्ण संबंध बढ़ रहे थे, या टूटे थे, या डोर उलझती जाती थी या नहीं—उससे 'एच॰ आर॰' को कोई मतलब नहीं था।

समुद्र को उसकी सतह पर मनबोट जा रही है या जान बचाने वाले जहाज़ियों की नाव—उससे क्या लगाव होता है। उसके लिए सब समान है। क्या शार्क, क्या सीपी। क्या पनडुब्बी, क्या सबमेरीन, क्या सैर सपाटे को जानेवाला 'याट' या माल लादनेवाला बड़ा जहाज़। वह अपना काम करता रहता है। 'एच॰ आर॰' अविचलित भाव से अपनी गेम को चलाये जा रहा था। मानो अच्छे-बुरे से परे—उसकी एक निश्चित पहचान थी कि उसकी कोई पहचान नहीं थी। उसके अनेक पते थे, चूंकि वह ठिकाने

का आदमी था। आदमी नहीं एक बहुत बड़ा खूंखार जानवर था।

और वह बेचारा लापता व्यक्ति, एक अदना-सा, छोटा-सा इन्सान अरविंद। उसकी एक अपनी पहचान थी। उसे वह मिटाने में लगा था। जितना वह मिटाने जाता, उतना ही अपनी करनी से ही उसी में उलझते जाता। वह अपने आपसे भागना चाहता था। जंगलों में, समुद्र किनारे, देश में, विदेश में—कहीं उसे शांति नहीं थी।

दो साल बीत गये। सब थक गये। लापता लापता ही रहेगा ऐसा सबने मान लिया। सबने उसकी खोज छोड़ दी।

पर कहानी यहां खत्म नहीं हुई।

# 22

शिमला के पास एक स्कूल में एक मास्टर छोटे-छोटे बच्चों को पढ़ाता और बहुत चुप्पे में एकान्त ज़िंदगी बिताता था। एक ढाबे में वह खाने जाता। कोई नौकर उसने नहीं रखा था। वह पहाड़ी ढंग की टोपी और वैसा ही कुर्ते के ऊपर कोट और चूड़ीदार पायजामा पहनता। उसके कंधे पर एक झोली रहती, उसमें कुछ काग़ज़, कुछ किताबें, कुछ पैसे। वह सदा एक वाकिंगस्टिक साथ रखता था। उसका नाम था शिवलाल।

मास्टर की बड़ी ख्याति थी। मन लगाकर पढ़ाता था। साहित्य और भाषा उसके प्रिय विषय थे। अंग्रेज़ी-हिंदी दोनों अच्छी तरह जानता था। पोस्ट आफिस में उसने कुछ पैसे जमा कर रखे थे। उसका कोई संगी-साथी नहीं था। खेलकूद उसे पसंद नहीं थे। कभी-कभार वह शहर चला जाता तो सिनेमा या नाटक देख लेता था।

शिमला के आदिवासियों की खोज करने के लिए आये एक विदेशी से उसकी दोस्ती हो गई। वह शिवलाल को 'फिलासफर' कहता था। और

यह इस विदेशी बिल को 'टूरिस्ट'। दोनों में काफी बातें होतीं। कई बेकार के विषयों पर। कई ऐसी जो गहरा अर्थ रखती थीं।

बिल शिमला और आसपास के पहाड़ी इलाके के लोगों के धर्म-विश्वासों में शोध कर रहा था, और उसे स्थानीय भाषा समझनेवाला 'दुभाषिया' चाहिए था। यह शिवलाल में उसे मिला।

एक दिन बिल 1911 में सी० सी० गार्बेट नाम के मंडी राज्य के सेटलमेंट आफीसर की कहानी बताने लगा—"चचियोट जिले में एक कामरू नाग का मंदिर है। यह पहाड़ी देवता बहुत ही विशिष्ट सिद्धि वाले माने जाते हैं। वहां किसी शूद्र को प्रवेश नहीं दिया जाता। तीर्थयात्री चांदी के सिक्के और गहने उस मंदिर के पास के तालाब में फेंकते थे। तांबे के सिक्के सब पुजारी रख लेते थे। मैंने सुझाव दिया कि ये पैसे पानी में तालाब के तल में पड़े रहते हैं, इनसे तो अच्छा है कि उन्हें निकाला जाये और किसी अच्छे सामाजिक उपयोग में लगाया जाये। पर पुजारियों ने इस बात का विरोध किया। कामरू नाग के उपासकों ने भी बड़ा विरोध किया। मंडी के राजा से विदा लेकर गार्बेट नीचे आये। रास्ते में बड़ी भारी वर्षा हुई। गार्बेट ने कोई पहाड़ी फल खा लिया था। उससे उसे अतिसार हो गया। सब लोगों ने कहा कि यह सब देवता का ही प्रकोप है। उसके चढ़ाये गये चढ़ावे को पानी में से निकालने का सुझाव यह विदेशी विधर्मी क्यों देता है?..."

और, "वैसे तो किसी भी मंदिर में बीड़ी-सिगरेट पीते हुए अंदर जाने नहीं दिया जाता, पर मंडी के पुराने महल में एक बाबाकोट नामक देवता है। उसके पास सदा एक हुक्का जरूर रखा हुआ रहता है। यह देवता धूम्रपान का शौकीन है। यहां उपासक और भक्त देवता को प्रसन्न करने के लिए तंबाकू चढ़ाते हैं। यह विरोधाभास तुम कैसे समझाते हो, फिलासफर?"

शिवलाल कुछ मुस्कराये। फिर गंभीरता से बोले—"टूरिस्ट, तुम भारत की देवता-परंपरा का यह परस्पर-विरोधी लगनेवाला चमत्कार नहीं समझ सकोगे! भारत कई तरह के सूत्रों का बुना एक विशाल पट है। शिव प्राच्य देवता हैं। वे स्वयं विजया का सेवन करते हैं। उन्हें विषैला

का आदमी था। आदमी नहीं एक वहुत वड़ा खूंखार जानवर था।

और वह वेचारा लापता व्यक्ति, एक अदना-सा, छोटा-सा इन्सान अरविंद। उसकी एक अपनी पहचान थी। उसे वह मिटाने में लगा था। जितना वह मिटाने जाता, उतना ही अपनी करनी से ही उसी में उलझते जाता। वह अपने आपसे भागना चाहता था। जंगलों में, समुद्र किनारे, देश में, विदेश में—कहीं उसे शांति नहीं थी।

दो साल वीत गये। सव थक गये। लापता लापता ही रहेगा ऐसा सवने मान लिया। सवने उसकी खोज छोड़ दी।

पर कहानी यहां खत्म नहीं हुई।

## 22

शिमला के पास एक स्कूल में एक मास्टर छोटे-छोटे वच्चों को पढ़ाता और वहुत चुप्पे में एकान्त जिंदगी विताता था। एक ढावे में वह खाने जाता। कोई नौकर उसने नहीं रखा था। वह पहाड़ी ढंग की टोपी और वैसा ही कुर्ते के ऊपर कोट और चूड़ीदार पायजामा पहनता। उसके कंधे पर एक झोली रहती, उसमें कुछ कागज़, कुछ कितावें, कुछ पैसे। वह सदा एक वाकिंगस्टिक साथ रखता था। उसका नाम था शिवलाल।

मास्टर की वड़ी ख्याति थी। मन लगाकर पढ़ाता था। साहित्य और भाषा उसके प्रिय विषय थे। अंग्रेजी-हिंदी दोनों अच्छी तरह जानता था। पोस्ट आफिस में उसने कुछ पैसे जमा कर रखे थे। उसका कोई संगी-साथी नहीं था। खेलकूद उसे पसंद नहीं थे। कभी-कभार वह शहर चला जाता तो सिनेमा या नाटक देख लेता था।

शिमला के आदिवासियों की खोज करने के लिए आये एक विदेशी से उसकी दोस्ती हो गई। वह शिवलाल को 'फिलासफर' कहता था। और

यह इस विदेशी बिल को 'टूरिस्ट'। दोनों में काफी बातें होतीं। कई बेकार के विषयों पर। कई ऐसी जो गहरा अर्थ रखती थीं।

बिल शिमला और आसपास के पहाड़ी इलाके के लोगों के धर्म-विश्वासों में शोध कर रहा था, और उसे स्थानीय भाषा समझनेवाला 'दुभाषिया' चाहिए था। यह शिवलाल में उसे मिला।

एक दिन बिल 1911 में सी० सी० गार्बेट नाम के मंडी राज्य के सेटलमेंट आफीसर की कहानी बताने लगा—"चचियोट जिले से एक कामरू नाग का मंदिर है। यह पहाड़ी देवता बहुत ही विशिष्ट सिद्धि वाले माने जाते हैं। वहां किसी शूद्र को प्रवेश नहीं दिया जाता। तीर्थयात्री चांदी के सिक्के और गहने उस मंदिर के पास के तालाब में फेंकते थे। तांबे के सिक्के सब पुजारी रख लेते थे। मैंने सुझाव दिया कि ये पैसे पानी में तालाब के तल में पड़े रहते हैं, इनसे तो अच्छा है कि उन्हें निकाला जाये और किसी अच्छे सामाजिक उपयोग में लगाया जाये। पर पुजारियों ने इस बात का विरोध किया। कामरू नाग के उपासकों ने भी बड़ा विरोध किया। मंडी के राजा से विदा लेकर गार्बेट नीचे आये। रास्ते में बड़ी भारी वर्षा हुई। गार्बेट ने कोई पहाड़ी फल खा लिया था। उसमें उसे अतिसार हो गया। सब लोगों ने कहा कि यह सब देवता का ही प्रकोप है। उसके चढ़ाये गये चढ़ावे को पानी में से निकालने का सुझाव यह विदेशी विधर्मी क्यों देता है?..."

और, "वैसे तो किसी भी मंदिर में बीड़ी-सिगरेट पीते हुए अंदर जाने नहीं दिया जाता, पर मंडी के पुराने महल में एक बाबाकोट नामक देवता है। उसके पास सदा एक हुक्का जरूर रखा हुआ रहता है। यह देवता धूम्रपान का शौकीन है। यहां उपासक और भक्त देवता को प्रसन्न करने के लिए तंबाकू चढ़ाते हैं। यह विरोधाभास तुम कैसे समझाते हो, फिलासफर?"

शिवलाल कुछ मुस्कराये। फिर गंभीरता से बोले—"टूरिस्ट, तुम भारत की देवता-परंपरा का यह परस्पर-विरोधी लगनेवाला चमत्कार नहीं समझ सकोगे! भारत कई तरह के सूत्रों का बुना एक विशाल पट है। शिव प्राच्य देवता हैं। वे स्वयं विजया का सेवन करते हैं। उन्हें विषैला

धतूरे का फूल चढ़ाया जाता है। वह गले में हलाहल धारण करते हैं। अर्य···देवता···मालायें···यह रुद्र मूर्ति, यह 'शिश्नदेवता' जिसकी वैदिकों ने निंदा की थी, समाहित कर लिया गया। धीरे-धीरे शिवोपनिषद् और शिवपुराण लिखे जाने लगे।"

"लेकिन ये सिक्के? यह देवताओं को चढ़ाया जाने वाला सोना, चांदी, आभूषण? क्या देवता यह सब चाहते हैं? या यह सब पुरोहितों की चालाकी है?"

"ऐसा है बिल, जिसे हम सर्वश्रेष्ठ, सर्वाधिक प्रिय मानते हैं, उसके आगे सबसे मूल्यवान धातुएं—सोना और चांदी, हीरे और जवाहरात क्या हैं? क्या इन जड़ वस्तुओं से अधिक मूल्यवान कोई वस्तु जीवन में नहीं है, जिसे ये सब चढ़ाये जा सकें।"

"तुम्हारे इस शिव के नाम भी अजीब-अजीब हैं। यह पंचानन या पांच सिरों वाला क्यों बताया जाता है। तीन आंखों और सप्तमातृकाओं या, नवमातृकाओं में यह विषम संख्याओं का क्यों विधान है? नवरात्र और पंचमी और सप्तमी की पूजाओं का विधान क्यों?"

"मैं ज़्यादा नहीं जानता टूरिस्ट। पर आदिम मनुष्य को पांच तत्त्व बहुत भय-विस्मय में डालते रहे हैं। उसे दो हाथ, दो कान, दो आंखें, दो ओंठ, दो पांव समझ में आते रहे हैं, पर यह तीन क्या हैं? तीन तिगाड़े बात बिगाड़े! 'त्रयाणां धूर्त्तानां' 'न गच्छयेत् 'ब्राह्मणत्रयम्' 'त्रिकाण्ठम् 7 तिगड्डम 7 तिकड़म; न तीन में, न तेरह में; तीन-पांच मत करो—पचासों ऐसे त्रिशूल हैं। पाँच भी जुड़ जायें तो पंचायत है, पांच उंगलियां हैं, पंच फ़ैसला है, भूत को भगाने का पंचाक्षरी मंत्र है। पर न जुड़े तो 'पांचक' है···"

बिल ने बताया।

"पंचक्रियाकारी शिव के सृष्टि, पालन, संहार, निग्रह, अनुग्रह ये पांच शक्तियां या प्रक्रियाएं बताई गई हैं। शिव जोगी है, हाथी की खाल ओढ़ता है—कृत्तिवास है; गजसंहार है। वही कालसंहार है, शिखरेश्वर है, पशुपति है, भिक्षाटन मूर्ति है।"

लाहौल के आदिवासियों में लिंग और सर्प की पूजा बहुत सामान्य

है। निराकार पत्थर को मक्खन या तेल से चुपड़कर हर गांव के मंदिर के बाहर रखा जाता है। खश शिवपूजक थे। केदारनाथ का मंदिर मशिया है। पहाड़ों में शिवमंदिरों के पुजारी ब्राह्मण होना जरूरी नहीं।

"शिव के साथ-साथ देवी की पूजा भी पहाड़ों में बहुत प्रचलित है। देवी दुःख, रोग, विघ्नों को दूर करती है। वही शीतला और मरी माई कहलाती है। वही शक्ति है, भुवनेश्वरी है। कुमारस्वामी ने प्रकृति के 'कलायें रूपांतरण' में कहा कि वह 'नये सूर्योदय जैसी' लावण्यमयी, विजया, प्रार्थना के दोषों को हरण करनेवाली, चमचमाते मुकुट को और कर्णाभूषणों को धारण करने वाली है। वह परम उदार और धन्य-धान्य समृद्धि देनेवाली आदि जननी है।"

"महिषासुर का डर सारे पहाड़ में ऐसा छाया है कि गुस्सा भी भैंसे की बलि देते हैं। कुल्लू के दशहरे में पहले ऐसी ही बलि चढ़ाई जाती थी। मंडी जिले के करसोग तहसील में काओ गांव में हर साल एक मेला होता है जिसमें भैंसा बलि में दिया जाता है। बगी या अठवार उत्सव में, जुलाई महीने में, गठचाल में भैंसे को एक झटके में नहीं मारते। उसे जख्मी करके छुट्टा छोड़ देते हैं। गांव वाले लोग उसे बल्लम और भालों से मारते हैं। उसका जो खून खेतों में छिटकता है, उसे यहां के आदिवासी खेतों के उपजाऊ बनने का वरदान मानते हैं। उस भैंसे को पहला वार करने-वाला बहुत भाग्यवान माना जाता है। उन लोगों में इसके लिए झगड़े होते हैं।

"शिमला में कोटगढ़ के पास कई चट्टानों पर शिवशक्ति के चिह्न अंकित हैं। कुल्लूमनाली, लाहौल और लद्दाख तक वे फैले हैं। नवरात्र में हर दिन नये कुमारी की पूजा होती है। कुछ लोगों में ललितापंचमी को पांच कुमारिकाओं की पूजा होती है।

"वैसे पहाड़ों में नवदुर्गा के हर दिन नये-नये नाम होते हैं। पहले दिन मधु-कैटभ को मारनेवाली महाकाली, दूसरे दिन महिषासुरमर्दिनी, तीसरे दिन चंडमुंड को मारनेवाली चामुंडा। चौथे दिन रक्तबीज का रक्त चूसने वाली काली। पांचवें दिन नंदा, जो योगमाया बनी। छठे दिन रक्तदंती। लोगों को अकाल से बचाती है वह सातवें दिन। आठवें दिन दुर्गा, अरुण

राक्षस का नाश करनेवाली लाभ्रमरी नौवें दिन। दसवें दिन दशहरा। अष्टमी को उपवास और बड़े भोज होते हैं। उसी दिन बड़ी बलि भी दी जाती है।

"जैसे शिवशक्ति का, वैसे ही पहाड़ों में सांप पूजा का बड़ा माहात्म्य है। शेष, तक्षक, वासुकी, वज्र, दंशन, करकोटक, केम्मली, शंखू, कली उसके नाम हैं। सर्पराज को दूध, मधु और बकरे चढ़ाये जाते हैं। किन्नर, किरात और नागों की यह भूमि। नाग पहले जल देवता रही होगी। पीपल के चौंतरे के पास उसका निवास है। मंडी के पास नागाचल का मंदिर है। रिवलसर तालाब में भी उसके बारे में ऐसा ही मिथक है। कामरू नाग सरोवर के पास एक ऐसा ही मंदिर है। श्रावण शुक्ल पंचमी को नाग देवता की पूजा होती है। कश्यप की पत्नी कद्रू से पैदा हुई ये संतानें। इस बिरूरी पंचमी को शिव की पूजा की जाती है। जिसके सिर पर कई नागों का मुकुट होता है। दीवारों पर पांच, सात या नौ नाग बनाते हैं। मंडी और कांगड़ा में सफेद चूने से गोबर-लीपी दीवारों पर बनाते हैं, तो गढ़वाल में चंदन या हल्दी से। यहां धूप जलाया जाता है और भुने हुए चने चढ़ाये जाते हैं। इस नागपंचमी के दिन हल चलाना मना है। दीवाली के बाद की नाग-पूजा में गोबर से बना एक नाग पूजा जाता है। उस पूजा के दिन अगर कोई सांप आ गया तो उसे 'निउगरा' कहते हैं, और उसे अपशकुनी माना जाता है और मार दिया जाता है। कामरू नाग की नाचन में पत्थर की मूर्ति है और मंडी में सनोरवादी में एक मंदिर है। शिमला और सिरमौर में 'महुन' नाग को बड़े आदर से पूजा जाता है। सोलंगवादी, ऊपरी विआसवादी, सर्वरीवादी, वज़ीरी-रूपी, सराज जैसे कुल्लू की जगहों में असंख्य नाग-मंदिर हैं। दरवाज़े, देहरी आदि पर नाग उत्कीर्ण हैं, पत्थरों में, लकड़ी में, लकड़ी पर लोहे के बने नाग कीलों से ठुके हैं। कश्मीर में 'अरव वन' में कई नाग-पूजक पहुंचते थे। कुगूरी गांव के पास चंबा में, केलांग नाग का मंदिर है। इस नाग ने वहां एक जगह दिखाई थी, जहां खोदने पर चश्मा निकल आया था और लोग अकाल से बच गये थे। चंबा के राजा रामसिंह ने एक अष्टधातु की नाग प्रतिमा वहां लगवाई।

"नाग से ही संबंधित है गुग्गा-पूजा। कांगड़ा, मंडी, बिलासपुर के जोगी, नाथ और गारुडी 'गुग्गा' को देवता मानते हैं। यह गुग्गा घोड़े पर बैठा होता है। ज्वालामुखी से देहरा जाते हुए ध्वाला गांव में एक प्रसिद्ध गुग्गा प्रतिमा है। वह बिना सिर के लड़ता जाता था, ऐसी आख्यायिका है। देवराज नामक राजपूत राजा की दो रानी थीं बचला और कचला। उन्हें बच्चा नहीं होता था। सो बचला गोरखनाथ के मंदिर गई। उन्होंने कहा, अगली बार आना तो वरदान दूंगा। कचला ने यह बात सुनकर बचला का रूप ले लिया और पहुंच गई। गोरखनाथ ने एक फल उसे दिया। दूसरे दिन बचला पहुंची। गोरख ने उसे भी फल दिया। बचला ने आधा फल खाया। आधा अपनी घोड़ी को दिया। कचला को लड़की हुई गुग्गी और बचला को पुत्र हुआ गुग्गा…"

ऐसी कितनी कहानियां बिल ने घूम-घूमकर जमा की थीं। शिवलाल उस विदेशी की यह अद्भुत लगन, संस्कृति के आदिम स्रोतों में अध्ययन के प्रति निष्ठा देखकर—चकित हो जाता था। बिल के पास कई साधन थे—टेपरेकार्डर, कैमरे और क्या-क्या नये साधन!

शिवलाल और बिल में कभी-कभी इस बात पर बहुत बहस भी हो जाती थी।

"बिल, तुम हमारे देश के अंधविश्वास और प्राचीन जादू-टोने, ओझाइती में इतनी रुचि क्यों लेते हो? क्या तुम्हारा यह कहना है कि भारत एक बहुत पिछड़ा हुआ देश है?"

"किसी चीज़ में विश्वास या अविश्वास से ही कोई देश पिछड़ा हुआ कैसे हो जाता है। हम सिर्फ यह कह रहे हैं कि तुम्हारे देश की सभ्यता बहुत पुरानी है।"

"सबसे पहले तो यहां आर्य आये, या बसने वे पहले से ही।"

"नहीं, सबसे पहले यहां आदिवासी थे। फिर द्राविड़ लोग आये। इन सब अनार्यों के बाद आर्य।"

"पर आर्य संस्कृति ने इन सबको अपने अंदर समो लिया।"

"उन्हें नष्ट करने की कोशिश की। उनकी पहचान मिटा दी।"

"क्या ये दोनों बातें एक ही हैं? तुम आर्यों को आक्रामक और दूसरों

की अस्मिता को खा जानेवाला कह रहे हो।"

"मैं नहीं कह रहा हूं। इतिहास यह बताता है। किसी समय मत्स्य, कूर्म, वराट, सिंह किसी-किसी जाति के बड़े प्रतीक थे। बाद में उन्हें अवतार बना दिया। उनके आसपास पुराण बुन लिये गये।"

"नहीं बिल, तुम हिंदू नहीं हो, इसलिए इस सर्वग्राहिता को समझ नहीं पा रहे हो। यह कितनी विशाल और विश्वव्यापिनी दृष्टि थी।"

"क्या अपनी पहचान खो देना कोई भी पसंद करता है।"

"क्यों नहीं ? बच्चा बच्चा नहीं बना रहता। नौजवान नौजवान नहीं बना रहता। बूढ़ा सदा बूढ़ा नहीं रहता तो क्या एक अवस्था दूसरे की पहचान को मिटाने का क्रम है या विकास का ?"

"बचपन का भोलापन तो खो ही जाता है, इस क्रम में। जवानी का जोश भी ज्यों का त्यों नहीं बना रहता। तो यह कालक्रम से होने वाले नैसर्गिक परिवर्तन हैं। पर यहां जान-बूझकर आपने-औरों की मान्यताओं पर अपनी मान्यता का आरोप किया। कलम लगाया।"

"क्या, योरोप और अमरीका में ऐसा नहीं होता ?"

"वहां एक पौधा उखाड़कर दूसरा लगाया जाता है। यहां तो पौधे का रूप ही बदल दिया जाता है। रंग ही बदल दिया जाता है। मैंने सुना है रवींद्रनाथ ने शांतिनिकेतन में आपके पेड़ की एक लता बनाने का यत्न किया।

"हिन्दू रूपांतरण नहीं, कई संस्कृतियों का एक संगम स्थल है। एक समुद्र है, जिसमें कई नदियां आकर मिलती हैं। एक बड़ा पुराना पहाड़ है, जिस पर बर्फ जमा चला जाता है···जमा चला जाता है।"

विनीता के पास बचा था आशुतोष का एक फोटो और वह डायरी। डायरी में समुद्र के साथ-साथ हिमालय पर भी बहुत-सी सामग्री जमा थी। विनीता जयामाता के उस आश्रम में काम करते-करते एक दिन यह विचार करने लगी कि हो सकता है वह हिमालय की ओर चला गया हो।

*हिमालय लोगों की पहचान को छिपाने का बहुत अच्छा स्थान हो सकता है। और उसे ही कई लोग आत्म-ज्ञान की प्राप्ति के लिए चुनते हैं।*

तो क्या आशुतोष किसी तीर्थस्थान में गया होगा? हरिद्वार, ऋषिकेश, बद्रीनाथ, केदारेश्वर या अन्य कोई स्थान?

नहीं-नहीं! आशुतोष के मन में सगठित, सत्यावादी धर्म के प्रति कोई श्रद्धा नहीं थी। वह जयामाता के आश्रम में भी इस सारे ढोंग-धतूरे में बहुत बचता था, दबी जबान से उसकी निंदा भी करता था। चमत्कार में उसका कोई विश्वास नहीं था। वह किसी सिद्धि या शक्ति की शीघ्र प्राप्ति में भी नहीं जुटा था, तो फिर वह कहां गया होगा? हिमालय में?

अलमोड़ा?

नैनीताल?

मसूरी?

देहरादून

या दार्जिलिंग, कर्सियांग, कलिङ्पोङ्, या नेपाल की सीमा पर, या तिब्बत की ओर?...

हिमालय इतना बड़ा है। उसमें एक छोटे से मानव-प्राणी का क्या ठिकाना है?

*उसकी डायरी में निकोलस रोरिक के बारे में बहुत-सी बातें लिखी हुई थी।* उसे चित्रकला से प्रेम था ही।

डायरी में लिखा था—

"निकोलस रोरिक रूस में सेंट पीटर्सबर्ग में 9अक्टूबर, 1874 को पैदा हुआ। वह वहीं एकेडेमी आफ आर्ट में, फैकल्टी आफ ला और इंस्टिट्यूट आफ आर्कियालोजी में पढ़ने को भरती हुआ और उसने जमकर अध्ययन किया। विदेशों में भी वह आगे पढ़ने के लिए गया। रूस, योरोप, मध्य-एशिया, मंगोलिया, तिब्बत, चीन, जापान का उसने भ्रमण किया। पर कहीं शांति नहीं मिली। अंत में वह भारत में आया और यहीं बस गया।

चौवन बरस की उम्र में उसने 1928 में पहली बार हिमालय देखा। और इस नगाधिराज के विराट सौंदर्य और गरिमा ने उसे कीलित कर दिया। वह आजीवन उस भव्यता और दिव्यता को कलम और कूंची से आंकने की कोशिश करता रहा। हजारों बड़े-बड़े चित्र उसने बनाये। पर उनसे अघाया नहीं। रोरिक ने लिखा—"विश्व में ऐसा प्रकाश, ऐसी आध्यात्मिक तृप्ति और कहीं नहीं है। जैसी हिमालय के इन मूल्यवान हिमखंडों में है···यह भारत का मुकुटमणि है। इसकी महानता का संदेश मैं विश्व को दे रहा हूं।"

कुल्लू की वादी में उसने जीवन के अंतिम बीस वर्ष बिताये। हिमालय की अनन्तता और अतुलनीयता से मोहित ऋषि रोरिक उसी के मनन और चिन्तन, उसी के निदिध्यास और साधना में डूब गया।

यहीं उसने अपनी वे अमर कृतियां चित्रित कीं, जिनके नाम दिये, स्मरण करो—जीवन की बूंदें, संघर्ष के मोती, मैत्रेय के चिह्न, पूर्व की पताकाएं, तिब्बत के किले, आखिरी देवदूत, शुभ शकुन, मानवी कर्म, शापित नगर, अद्‌भुत आलोक, सांपों का नगर—जैसे पुराने चित्र जो प्रथम महायुद्ध से प्रभावित थे, वे पीछे छूट गये। अब रोरिक बनाने लगे—संत सेर्गियस, गांवटा प्रोटेक्टरियम, संत जैसे भूत, बुद्ध-दाता, रिग्‌देन ज्येपो का आदेश, श्रीकृष्ण, कल्कि अवतार आदि। वह सत्-चित्, आनंद की उपासना में डूब गये।

रोरिक ने कितनी सारी किताबें लिखीं। 1914 में उनकी सम्पूर्ण रचनावली छपी थी। पर बाद में मोर्या के फूल (1921), सुदृढ़ (1925) अटल हिमालय (1929), आशीर्वाद के पथ (1929) प्रकाश का राज्य (1929), एशिया का हृदय (1929), शांबाला (1930), आग का दुर्ग

(1933), भविष्य के द्वार (1936), सुंदर एकता (1946), हिमालय—प्रकाशक आवास (1947), हिमवंत (1947) प्रसिद्ध हैं। (कविताएं) रहस्यवाद पर लेख, विश्वशांति का प्रचार कितने-कितने विषय हैं।

कुल्लू में उसकी समाधि है। उस पर लिखा है—

"13 दिसंबर, 1947 में निकोलस रोरिक, भारत के महान रूसी मित्र को यहां दफनाया गया।"

उसी समय में नई दिल्ली में जवाहरलाल नेहरू ने उनके चित्रों की बड़ी प्रदर्शनी का उद्घाटन करते हुए उन्हें अपनी श्रद्धा अर्पित की थी।

1920 में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने लंदन में उन्हें पत्र लिखा—'तुम्हारे चित्रों ने मुझे बहुत अन्तस्तल तक छू लिया है।' गोर्की ने कहा कि 'वह सबसे बड़े अन्तर्देशीय (इंटियुशनिस्ट) थे।"

उन्होंने सात हजार से ऊपर चित्र बनाये। उनमें से कुछ ही संग्रहालयों में हैं।

पता नहीं क्यों विनीता को लगा कि हो-न-हो, आशुतोष इसी महर्षि की तलाश में गया होगा। उसकी डायरी में यही अंतिम पृष्ठ थे—रोरिक के बारे में...

विनीता भी कुल्लू पहुंची—कैमरा लेकर। दशहरा की छुट्टियों में।

वहां प्रवास में उसकी भेंट एक नवयुवक से हो गयी। यह भी संयोग की बात है। वह राजनैतिक कार्यकर्ता था। उसने अपना नाम कामरेड बंसीलाल बताया। वह शिमला के कुलियों की यूनियन का काम करता था। पढ़ा-लिखा था और बहुत समर्पित आदर्शवादी जान पड़ा।

विनीता ने उससे धर्म पर बहस करना व्यर्थ समझा। पर राजनीति के बारे में उसके मन में कई शंकाएं थीं। उसने पूछा—

"आपने रोरिक का नाम सुना है?"

"क्यों नहीं? बड़े आर्टिस्ट थे।"

"रूसी थे। भारत-प्रेमी थे। वे रूस लौटकर क्यों नहीं गये?"

"यह तो उनकी मर्जी की बात है। पर मुझे लगता है वे जवाहरलाल

नेहरू के मित्र थे। उन्होंने विश्वशांति के लिए बड़ा काम किया।"···

"क्या आपको उनके चित्रों से आध्यात्मिक शांति नहीं मिलती ?"

"आपकी भाषा हमारी भाषा से नहीं मिलती-जुलती। हम ऐसी आत्मा और शांति में विश्वास नहीं करते, जिसमें लाखों-करोड़ों भूखे-नंगे तड़प रहे हों और आप अपनी आसपास की दुनिया से आंखें मूंदे हुए हों। यह शुद्ध पलायनवाद है।"

"क्या आदमी सिर्फ पेट है, और जानवर है ?"

"सबसे पहले वह यही है।"

"आपने आदिवासियों को नाचते-गाते देखा है, सुना है ? वे चित्र बनाते हैं। खुश रहते हैं, अधनंगे रहकर भी।"

"वह प्रकृति के साथ एकाकार हैं, या दूसरे शब्दों में हमारी तथाकथित सभ्यता से कटे हुए और दूर हैं।"

"पर औद्योगिक नगरों में, यंत्र सभ्यता ने आदमी को क्या ज्यादा सुख दिया है ?"

"यह बहसतलब बात है। पर इतना सच है कि भारत की आज की हालत में मुझे कोई रास्ता नहीं नजर आता, सिवा क्रांति के— ।"

"क्यों ?"

"कोई भी पैसेवाला अपनी पूंजी गरीबों में बांटकर देना नहीं चाहता वह परोपकार के नाम पर मंदिर बनवा देता है। लग्गी से पानी पिलाना चाहता है।"

"पर यह काम तो नेताओं का है। वे आर्थिक वितरण ठीक से करें। वे गरीबी हटाने का उपाय करें। उचित वैज्ञानिक शिक्षा दें।"

"नेता कहां से आते हैं ? किस वर्ग से आते हैं ?"

"क्यों ? बहुत से नेता बहुत गरीब तबके से आगे आये। लालबहादुर शास्त्री या आंबेडकर, पी० सी० जोशी या जगजीवनराम, शेख अब्दुल्ला या मातंगिनी हाजरा क्या बहुत अमीर घर से आये थे···।"

"सवाल इस बात का नहीं है कि उनके पिता या प्रपिता गरीब थे या अमीर। सवाल इसका है कि वे किस वर्ग का हित साध्य करते हैं।"

विनीता ने देखा कि इस आदमी से बहस का कोई फ़ायदा नहीं है।

वह घूम फिरकर उसी मूल स्वर पर आ जाता है तो उसने विषयांतर किया—

"कहिए, वंशीलालजी, यहां आदिवासियों में भी अन्य कोई काम करते हैं?"

"हम शहरी मजदूरों में काम करते हैं। होटल के कर्मचारी, छोटे किरानी या क्लर्क, मास्टर सब में हम यूनियन बनाना चाहते हैं…।"

"विचार तो अच्छा है। पर अभी तो मैं यहां के आदिवासियों के बारे में जानना चाहती थी।"

"हां, एक अमेरिकन स्कालर आया था। वह शिमला के आसपास कई जंगली बस्तियों में गया। आप उससे मिलिये।"

"कहां रहते हैं वे?"

"शिमला के कार्लटन होटल में।"

"अच्छा, मैं जाऊंगी।"

विनीता कार्लटन होटल पहुंची तो बिल हिमालय की लोककथाओं और लोकगीतों में डूबे हुए थे।

विनीता के पास कैमरा देखकर उन्होंने पूछा—"आपको भी फोटोग्राफी का शौक है?"

"हां।"

"और क्या शौक है?"

"मुझे लोकगीत और लोककथाएं बहुत अच्छी लगती हैं।"

"तो आपके पास समय है?"

"क्यों?"

"मैं ये दो गीत और दो कहानियां जो पहाड़ों से प्राप्त हुई हैं, सुनाता हूं। इसका अर्थ मैंने अंग्रेज़ी में ठीक किया है या नहीं, यह आप देखें। मैं भारतीयों की भावनाओं को दुखाना नहीं चाहता।"

बिल ने सुनाना शुरू किया। पहला गीत किन्नर जाति का भिक्षुणी-गीत है—

ओगो लामा तंगामा, तूम कोशाग दुशी दोम्याता मुनी
मनंगिरन चोहक भूरे, बोन-पूगस चोहक बागे

परायो विभांतंगामग, शूम बौशांग सुखी दोम्याता दुखी
घोरववबोन घन्घेलामीक, सारेजन जालू कोयों

उसने अर्थ पढ़कर सुनाया—

"अगर भिक्षुणी बनोगी तो तीन साल तक दुख अवश्य उठाना पड़ेगा। उसके बाद तो पांचों उंगलियों घीमे हैं। नारी जाति में भी तुम्हारा बड़ा मान होगा, लोक में आदर होगा। लोग तुम्हारे चरणों में शीश नवायेंगे।"

"और अगर शादी करोगी तो तीन साल तो अवश्य सुखी जीवन काटोगी। उसके बाद गृहस्थ जीवन में फंसकर अपना सुख भूल जाओगी।"

विनीता ने कहा—"कितनी बढ़िया बात कर दी है। त्याग और भोग का सार चार पंक्तियों में निचोड़कर रख दिया। वाह!"

बिल ने कहा—"एक और गीत सुनो। प्रेम की महिमा का गीत है। यह भी किन्नर-देश की जनजाति का गीत है—

जूमिग संगियू तंगेस, रंगदानि चलशे
रंगदानि वास्वयड दानि लि मेदान
दानिली मेदान जंगल लि मंगल
जंगल लि मंगल थारंग लि तिथंड
थारंग लि तिथंड, न्यातउ लि कुलंड
न्यानउ लि कुलड, कुलड लि वायु
आफर वास्वयड छिरप फारक दुग्यो।"

इसका अर्थ है—"नायिका अपने प्रिय से मिलने जाती है तो रास्ते में अनेक विरोध का जो अवरोध का कार्य करते हैं शांत और बौने हो जाते हैं। बड़े-बड़े पहाड़ टीले बन जाते हैं, उनकी ऊंचाइयां झुक जाती हैं; जंगल में मंगल की संभावना बढ़ जाती है और घर में मंदिर तथा नदियां छोटे तालाब का रूप धारण कर लेती हैं। मिलन-प्रसंग में अवरोध के क्षण टलते चले जाते हैं।"

विनीता ने कहा—"अभी तो मुझे जाना है। कल फिर आऊंगी तो और विस्तार से बातें करूंगी।"

जाते-जाते उसका ध्यान टेबल पर बिल के साथ एक भारतीय मित्र के फोटो की ओर गया और वह ठिठक गई। उसने पूछा—यह आपके साथ कौन है?

"मास्टर शिवलाल है।"

"मास्टर शिवलाल कौन?"

"वही हमारी सहायता करने वाला दुभाषिया है। बहुत होशियार नौजवान है। बहुत दुनिया घूमा हुआ है। अंग्रेजी भी अच्छी जानता है।"

विनीता को फोटो देखकर उस चेहरे में आशुतोष का आभास हुआ। शिवलाल कहीं आशुतोष ही तो नहीं। उसने तै किया कि अगली बार वह इस बात का पक्का पता लगायेगी।

विनीता दूसरे दिन बिल के पास आई तो अपने साथ में उसने सीधा हुआ आशुतोष का फोटो भी ले आई।

पहले तो उसे बिल से दो पहाड़ी लोककथाएं सुननी पड़ी। अगली बार वह तुलनात्मक रूप से हिमालय में बसी अन्य जनजातियों, जैसे भोटेई 'कागलेहरोल' (लोककथाओं) में से दो कहानियां पढ़ी :

खुमन नामक स्थान में खुमन गोमंबा अभोबा नामक व्यक्ति रहता था। वह सुन्दर युवा था और अपनी ताकत के लिए मशहूर था। वह एक छोटी-सी पुष्करिणी का मालिक था। एक दिन उसने देखा कि पुष्करिणी का जल गन्दा हो गया है। उसके पश्चात् कई दिनों तक क्रमशः उसने देखा कि पुष्करिणी का जल बराबर रात के समय गन्दा हो जाता है। वह बहुत क्रुद्ध हुआ और गन्दा करने वाले को दण्डित करने की उसने सोची। एक रात को झाड़ियों के पीछे छिपकर उसने पुष्करिणी पर दृष्टि रखी। अर्धरात्रि को उसने देखा कि आकाश से सात 'हैलोई' या परियां उड़ती हुई आईं और उन्होंने पुष्करिणी में उतरकर तैरना और खेलना शुरू किया। वह झाड़ियों के पीछे से दौड़ता हुआ आया और उसने एक 'हैलोई' को पकड़ लिया।

परियों ने बड़ी विनतियां की, मनुहार की, इसरार की कि व

छोड़ दे। पर अचौवा नहीं माना। तब परियों ने कहा कि परी को छोड़ देने के बदले में वह जो चाहे उसे वे देने को तैयार हैं। अचौवा ने कहा कि वह सबसे छोटी और सुन्दर हैलोई या परी से विवाह करने पर ही अन्य परियों को छोड़ सकता है। परियां इस पर राजी हो गयीं और उन्होंने आशीर्वाद दिया कि हैलोई से विवाह कर वह सौ वर्ष तक जियेगा।

अब अचौवा का कुछ समय तो सुख से बीता पर परी तो परी होती है। वह अपनी आदत से बाज नहीं आती थी। वह मनुष्य जीवन की परिधि में नहीं रह सकती थी। जब अचौवा काम से लौटता तो वह परी को खेलती, गाती या बादलों के साथ उड़ती हुई पाता था। परी से उसने अनुरोध किया कि वह साधारण मनुष्यों की तरह रहे, पर वह नहीं मानती थी।

एक दिन वह घर छोड़कर जाने लगा कि उसने परी से विवाह करके बहुत बड़ी भूल की है। उसने अपने घर का परित्याग किया और वह किसी अनजान स्थान पर चला गया। सौ साल पूरे नहीं हुए थे। इसलिए परी ने उसे बहुत ढूंढ़ा, पर वह अचौवा को कहीं नहीं पा सकी। इसलिए वह पुनर्जन्म की प्रतीक्षा करने लगी।

"बाद में उसका जन्म पुरैम्बा नाम से हुआ और उसकी पत्नी वही परी न्यांग खारीमा बनी?"

बिल ने टिप्पणी की—"क्या बढ़िया रूपक है मनुष्य का आदर्शों के पीछे जन्म-जन्मान्तर भागने का। वह सदा दुखी ही रहता है।"

विनीता ने कहा—"मनुष्य के असमाधान का कारण आपके आदर्श नहीं, बल्कि उनकी अपूर्णता है।"

"जो भी हो वह परियों के पीछे सदा से भागता आ रहा है, और यह पाता है कि वह पुरूरवा या लेडा के पीछे भागने वाले नायक की तरह अकेला ही है और वैसा ही रहेगा।"

विनीता—"और उस स्त्री को भी तो यही लगता होगा। वह देवता जिसे समझी थी, वह मिट्टी का पुतला निकला।"

बिल जोर से हंस पड़ा और इस तरह की एक और बच्चों के लिए मैतेई लोक-कथा सुनाई, जिसमें आदमी और बन्दर दोनों की चतु-

राई का, अपने-आपको एक-दूसरे से अधिक चतुर समझने का किस्सा था—

"एक बार एक वृद्ध दम्पति अपने खेत में अरबी बो रहे थे। इतने में कुछ बन्दर आये। उन्होंने कहा कि अरबी बोने की ऐसी विधि उन्हें बतायेंगे जिससे अरबी की फसल शीघ्र और अच्छी हो। वृद्ध दम्पति राजी हो गये। बन्दरों ने उन्हें बताया कि अरबी के बीज के ऊपर वाले हिस्से को जमीन के ऊपर गाड़ा जाये और पत्ते वाले भाग को जमीन के नीचे। कृषक दम्पत्ति ने ऐसा ही किया। रात में बन्दरों ने जमीन के ऊपर निकले अरबी के पत्तों को खा डाला और जंगली अरबी के पत्तों को उनके स्थान पर गाड़ दिया। सुबह कृषक दम्पति अरबी के पत्तों को इतना जल्दी बढ़ा हुआ देखकर बहुत आनन्दित हुआ। उन्होंने बन्दरों को सबक सिखाने की सोची। कृषक कपड़ा ओढ़कर हाथ में डंडा लेकर लेट गया और उसकी पत्नी चिल्ला-चिल्लाकर रोने लगी। वह कहने लगी—

*'पाहन खाइना मिकिबा, नाइटेन पाइना हल्लाकू'*

अर्थात् 'अरबी खाकर मर गया। कुछ खाकर जीवित हो जा'। "मैतेई लोग मानते हैं कि कद्दू खाने से मुंह की खुजली दूर हो जाती है।)

उसका रोना सुनकर बन्दर फिर आ गये। उन्होंने बुढ़िया को ढाढ़स बंधाया कि वे वृद्ध का दाहकर्म करायेंगे। वे ज्यों ही वृद्ध को उठाने लगे कि वह अचानक उठ खड़ा हुआ और उसने डंडों से बन्दरों की अच्छी पिटाई की।"

विनीता हंस पड़ी। सब जगह मनुष्य की चतुराई किस तरह से काम आती है। हमारे लोक-साहित्य में कितना कुछ इस बारे में लिखा भरा पड़ा है।

फिर उसने शिवलाल के बारे में जानना चाहा। बिल ने बताया कि हां, वह उसे ले जायेगा और मिलायेगा। शिवलाल को भी पहाड़ी लोगों के धार्मिक विश्वासों के बारे में शोध करने में बड़ी रुचि है।

विनीता ने पूछा— "क्या शिवलाल ने अपने पूर्व जीवन के बारे में

कुछ वताया ?

विल बोला—"नहीं।"

विनीता—"आपने जानने का यत्न भी नहीं किया।"

विल—"हम किसी के निजी जीवन को ज़्यादा नहीं जानना चाहते। अपना-अपना जीवन है। कोई छिपाना चाहता है, कोई खोलकर वताना।"

विनीता—"यह भी ठीक ही है।"

"विल—"पर आपकी उसमें दिलचस्पी क्यों है ?"

विनीता—"मुझे लगता है कि वह मेरा परिचित है।"

विल—"सो कैसे ?"

विनीता—"उसका चेहरा वहुत कुछ मेरे एक परिचित से मिलता-जुलता है।"

विल—"कई वार दो चेहरे वहुत एक-से होते हैं।"

विनीता—"अच्छा ? पर मैं गलती नहीं कर सकती। मेरे पास यह छायाचित्र है। देखिये।"

विल ने इस चित्र को उसके कमरे में रखे चित्र से मिलाया और काफी समानता दिखाई दी। हां, मूंछें जो उसने उस समय रखी थीं वे वहां नहीं थीं।

यह तै हुआ कि दूसरे दिन विल उसे शिवलाल के पास ले जायेगा।

वह जव पहुंचे तव शिवलाल के साथ कामरेड वंशीलाल वैठा था। विल हमेशा सोचता था कि दोनों में क्या समानता है ? क्यों दोनों इतना तर्क करते हैं ?

कामरेड वंशीलाल मार्क्सवादी हैं। मजदूरों के नेता हैं। उन्हें आदिवासियों के धर्म-विश्वासों से कोई मतलव नहीं।

विल उसी की खोज करता है और उसके लिए वह शिवलाल की दुभाषिए के नाते सहायता लेता है। शायद दोनों में परस्पर विरोध ही दोनों की मैत्री का मूल कारण है। कई वार दो परस्पर विरोधी विन्दु एक-दूसरे की ओर आकृष्ट होते हैं।

लगता था कि दोनों का यह वाद-विवाद बहुत देर से चल रहा था। और दोनों किसी नतीजे पर नहीं पहुंच रहे थे। दोनों मानो आवृत्तों में घूम रहे थे। जब अपने अपने वर्तुल में दो व्यक्ति घूमते रहते हैं तो यहां होती है वह रेखा या बिन्दु, जिस पर दोनों मिल पाते हैं। यह ज्यामिती का प्रश्न नहीं, मानवी व्यापार में संभावनाओं और संयोग का व्यापार भी महत्त्वपूर्ण है।

कामरेड बंसीलाल संयोग को नहीं मानते थे। सब कुछ सुनिश्चित था। भौतिक कारणों के भौतिक कार्य···

कामरेड बंसीलाल की मास्टर शिवलाल से बहस कभी खतम ही नहीं होती थी। दोनों जितना ही एक-दूसरे को समझने का प्रयत्न करते, उतना ही वे एक-दूसरे से दूर पहुंच जाते थे। शिवलाल का प्रश्न था—"आदिम समाज किस तरह से असभ्य है?"

बंसीलाल—"वह जंगली समाज है। शिकार पर जीता है।"

शिवलाल—"क्या आज के सभ्य समाज के लोग शिकार नहीं करते। वे प्रकृति की और भी लूटपाट करते, ऐसा मुझे लगता है। देखिए, कितना प्रदूषण फैल रहा है।"

बंसीलाल—"वह समाज वैज्ञानिक नहीं था। मनुष्य बुद्धि का उपयोग नहीं करता था।

शिवलाल—यह आप कैसे कह सकते हैं। बुद्धि का अर्थ यंत्र-युग में सापेक्षतावाद और अणु-बम का निर्माण ही है क्या? प्राचीन भारत में गणित में, ज्योतिष में, वैद्यक और आयुर्वेद में, तर्क और न्याय में कितनी सूक्ष्म चर्चा की गई है, अन्वेषण किये हैं। सारा संसार उनसे चकित है। और आप उन्हें बेपढ़ा-लिखा कहते हैं!"

बंसी—"आप मेरी बात समझ नहीं रहे हैं। वह गुरु-शिष्य परम्परा, वह अपनी विद्या को गुप्त रखना—यह सब बातें कितनी पिछड़ी हुई थी। देखिए, उस समय कवि लोग राजाओं की प्रशस्तियां लिखते थे, देव-दासियां मन्दिरों में आजन्म अविवाहित रहकर नाचती थीं। एक-एक मन्दिर के निर्माण में कितने-कितने दासों का जीवन नष्ट होता था। यह कोई सभ्यता थी?"

शिव—"आप प्राचीन भारत का एकांगी चित्र दे रहे हैं, मित्र! उसी समय हमारे सर्वश्रेष्ठ शिल्प-स्थापत्य और चित्र-कला के नमूने निर्मित हुए। मौर्य और गुप्तकाल के और उससे भी पहले के मामल्लपुरम्, सांची, भरहुत, मीनाक्षी मन्दिर, बृहदेश्वर, एलोरा, अजंता, बाहुबली, खजुराहो, भुवनेश्वर, कोणार्क यह सब प्राचीन और मध्ययुगीन भारत के चमत्कार हैं।"

वंशी—"जाने दीजिये। कला को सामाजिक जीवन दीजिये। मनु को क्या आप प्रगतिशील विचारक कहेंगे? स्त्रियों और शूद्रों को उसने एक-सा नीचा स्थान दिया। उसी ने वर्ण-श्रेष्ठता का सिद्धान्त चलाया, जो कि आज भी राष्ट्र को घुन की तरह लगा हुआ है।"

शिव—"मुझे यह बताइये कि मनु को छोड़ दीजिये, पर कौटिल्य का अर्थशास्त्र, कल्हण की राजतरंगिणी, महाभारत का शांतिपर्व, स्मृतियां—ये सब क्या समाज को प्रतिक्रियावादी विचार ही देते हैं? अर्थशास्त्र में तो यहां तक लिखा है कि जिस राजा को प्रजा को सुखी रखने की राज्यकला नहीं आती, उसके विरुद्ध विद्रोह कर देना चाहिए। हर शास्त्र को परीक्षा के अनन्तर ही ग्रहण करना चाहिए, यह विधान है।"

वंशी—"वह सब प्राचीन भारत की बात छोड़िये। आज की दशा देखिये। यहां कुलियों की जिंदगी देखिए। बंबई में होटल मजदूरों और कलकत्ता में रिक्शा चालकों की जिंदगी देखिये। इतनी गंदगी में वे रहते हैं। ऐसी चालों, खोलियों, बस्तियों, और झुग्गी-झोंपड़ियों में रहकर आप धर्म और भारतीय संस्कृति की महानता की बातें करते हैं। आपको इसमें कोई विरोधाभास और लज्जा नहीं जान पड़ती?"

शिव—"आप विषय से दूर जा रहे हैं। यह सब शहरी ज़िन्दगी की बुराइयां फिर उसी प्राचीन जीवन-पद्धति और सांस्कृतिक मूल्यों की पावनता से दूर जाने के कारण है। आज का मानव एकदम आचार-च्युत हो गया है। आप लोगों ने उसे क्षुधा-काम का एक पशु मात्र बना दिया है। यदि राजनीति तामसिकता पर आधारित होगी तो मनुष्य

सात्विकता की ओर कैसे भागेगा ?"

वंशी—"आप जीवन को एकांगी दृष्टि से देख रहे हैं। आप मनुष्य के भीतर के पशु को भुलाकर केवल देवता की बात कर रहे हैं। एक के बिना दूसरा बेमतलब है।"

"शिव—आप मनुष्य को एक युद्ध-भूमि बना रहे हैं।"

वंशी—"मैं नहीं बना रहा हूं आपकी गीता ने वैसा ही बना रखा है। मुझे तो गीता एक गोलमोल किताब लगती है, जिसमें सबको खुश करने की व्यवस्था है। उसके कितने-कितने अर्थ किये गये।"

शिव—"यह उस किताब की महानता है या क्षुद्रता ? उसकी सामर्थ्य है या सीमा।"

वंशी—"जाने दीजिए, आप हमारा द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद जान-बूझकर समझना नहीं चाहते। असली बात यह है कि हिन्दुत्व का विकल्प बुद्ध ने ही बहुत पहले सामने रख दिया था।

शिव—"फिर वह चला क्यों नहीं ? भारत में ही उसका क्षय हो गया। बाहर वह फैला।"

वंशी—"आपके गांधी का क्या हुआ ? यहां कोई उसको आचरण में लाता नहीं। रिचर्ड एटनबरो ने फिल्म बनाई और वह सारी दुनिया में चल गई।"

शिव—"दुनिया मानेगी या न मानेगी, क्या इसी पर भारतीयता निर्भर है ? आपके रूस के साम्यवाद को कितने वर्षों बाद बाहर की दुनिया ने अपनाया और कितना अपनाया ?"

वंशी—रूस की क्रांति को 65 वर्ष हुए हैं—एक सदी भी पूरी नहीं बीती। एक तिहाई दुनिया आज साम्यवादी है। भारतीय संस्कृति तीन हजार बरस पुरानी है, कितने लोग हिन्दू बने हैं ? भारत के बाहर ?"

शिव—"हम धर्मान्तर करने में विश्वास नहीं करते। जो ऐसा धर्मान्तर करता है, वह कल और दूसरा कोई धर्म नहीं अपनायेगा, इसका क्या भरोसा है ?"

वंशी—"मैं भौतिकवादी हूं। और धर्म के दिन अब गिनती के हैं, ऐसा मैं मानता हूं।"

शिव—ऐसा होता तो धर्म के नाम पर इतने संघर्ष—ईरान-इराक, लेबनान, जेरूसलम, इजराईल, आयरलैंड आदि में होते ही क्यों ? अभी भी धर्म के लिए प्राण देने वाले लोग सारी दुनिया में हैं।"

वंशी—"मैं कहता हूं, अब भी जंगलीपन शेष है, तो इससे आदमी के सभ्य होने का दावा क्या गलत हो जाता है ?"

यह बहस यों ही चलती रहती कि बिल आ गया। उसने कहा कि 'सुनो शिव एक लड़की मेरे पास आई है और वह तुमसे मिलना चाहती है।

शिव—"कौन है वह ?"

बिल—"वह कलकत्ते से आई है और अपना नाम विनीता बतलाती हैं। वह तुम्हारा फोटो देखकर ही बड़ी 'इम्प्रैस' हो गई।"

शिव भीतर ही भीतर सिहर उठा। पुनः वही एच. आर. के लम्बे-लम्बे हाथ रक्त-रंजित नाखून—एक बड़ा-सा मकड़ा या आक्टोपस—उसके खून का पिपासु। अब वह कहां बच पायेगा ?

फांसी का फंदा और जेल के सींखचे उसे दिखाई देने लगे। वह वहां से उठकर चल दिया। अब वह विचार करने लगा कि कहीं भागकर चला जाये। पर कहां जायेगा वह इस तरह से इतना जल्दी। रात को उसे ठीक तरह से नींद नहीं आई।

सवेरे ही उसके दरवाजे पर खटखट हुई और उसने दरवाजा खोलकर देखा तो विनीता खड़ी थी।

पहले तो विनीता कुछ बोली नहीं।

शिव ने कहा—आओ अंदर।

विनीता धीरे-धीरे उस छोटे-से कमरे में आई। अपने बेतरतीब कागज इधर-उधर ठीक-ठाक करके शिव ने कहा—"बैठो।" एक छोटी लकड़ी की फोल्डिंग-चेअर उसने आगे कर दी।

विनीता बैठ गई।

शिवलाल ने ही बात शुरू की—"क्या तुमने समझ लिया था कि मैं

सचमुच मर गया ?"

और वह खुद ही हंसा।

अब बारी विनीता की थी—"जो लोग ऐसी धमकी देकर गाय में अपनी डायरी छोड़ जाते हैं, वे वैसा करते नहीं। अगर आप मर जाते तो उस डायरी की वे सुन्दर-सुन्दर कविताएं पढ़कर बाद में कौन आपको दाद देने आता।"

शिवलाल—"क्या सचमुच वो तुकबन्दियां तुम्हें अच्छी लगी ?"

विनीता—"हां, मैं झूठी प्रशंसा नहीं करती।"

शिवलाल—"चलो, किसी ने उन्हें पढ़ा और उनका नोटिस तो लिया।"

विनीता—"आपकी कविता में बार-बार मृत्यु का उल्लेख और संकेत क्यों आता है ?"

शिवलाल—"मुझे लगता है कि जो इतना उच्छल सागर है वह चौदह रत्नों के छिपने का स्थान है। वह उन मूल्यवान वस्तुओं की मौत ही तो है। चपलता सिर्फ बाहरी है। भीतर हाहाकार है, ज्वाला है।"

विनीता—"तुम समुद्र को अपने ऊपर घटित कर रहे हो ?"

शिवलाल—"नहीं, इस हिमालय को ले लो। शिव ताडव करते-करते मानो यहां कीलित हो गये। जड़ीभूत हो गये।"

विनीता—"हो सकता है प्रकृति में ऐसी लुका-छुपी, ऐसा विरोधाभास भरा हुआ हो, पर मनुष्य में भी क्या ऐसा ही होता है।"

शिवलाल—"मनुष्य अपने आपसे, अपने मूल स्वभाव और धर्म से भागता फिरता है। जितना ही भागता है, उतना ही वह दुखी होता है। शायद इस दुःख में ही उसका सुख छिपा है।

विनीता—"आप इस तरह की बातें करने में बहुत अभ्यस्त हो गये हैं। है जरूर मानव जीवन एक पहेली। और इसका सुझोवल भी शायद उसी में छिपा है।"

शिवलाल—"मुझे कभी उम्मीद नहीं थी कि आप मुझे इस तरह से यहां सहसा मिल जाओगी।"

विनीता—"योगायोग है।"

शिवलाल—वियोग के वाद संयोग कितना मधुर कितना कटु ?"

विनीता—"जो भी हो, अव वताओ कि तुम्हारा आगे क्या प्रोग्राम है ?"

शिवलाल—"कुछ नहीं—यही स्कूल जाना, वच्चों को पढ़ाना। शाम को किसी के साथ गप्पें लड़ाना। मन्दिरों में घूमना···।"

विनीता—वह दैनिक कार्यक्रम नहीं पूछ रही हूं। जीवन क्या इसी हिमालय से वंध गया है अव ? सारा भविष्य यहीं इसी शिमले में विताना, है ?"

शिवलाल—"ऐसी प्रतिज्ञा तो मैंने नहीं की।"

विनीता—"फिर वोलो, आगे कहां जाना है ? जीवन की दिशा क्या है ?"

शिवलाल—"वही तो मैं नहीं जानता, विनीता !"

विनीता—"मैं कहती हूं शिव, जीवन से भागो मत। उसका सामना करो।"

शिवलाल—"मैं जीवन में कोई अच्छी चीज नहीं देख पाता।"

विनीता—"यदि अच्छाई न हो तो वुराई का कोई अर्थ नहीं होता।"

शिवलाल—"यह सव वोलना ठीक है, परन्तु व्यावहारिक जीवन में वुराई ही वुराई अधिक है।"

विनीता—"ऐसा मैं नहीं मानती।"

शिवलाल—"अपने-अपने मानने की वात है।"

विनीता—"आज तो विल और वंशीलाल यहां हैं। मैं आपसे एकान्त में आकर मिलूंगी।"

शिवलाल ने समय दिया और निश्चय हुआ कि वह मिलने आयेगी, उस समय वहां कोई नहीं होगा।

## 25

शिवलाल को विनीता का आग्रह टालना मुश्किल था। उसने कहा—"मैं वापिस उस जमामाना की हवेली में नहीं जाऊंगा, वहां मेरा दम घुटता है। उस अध्यात्म की आराधिका के आसपास कैसे-कैसे बदमाश आन जुटे हैं। वह सेठ झंगियानी और उसके एक से एक घुटे हुए दोस्त। वह सारा धर्म की ओट में चलने वाला व्यापार। वह भोले विदेशी-जो इस तरह की भारत की तस्वीर बाहर पेश करके यह समझते हैं कि अफ्रीका-एशिया में आनेवाले तूफान को वे रोक सकेंगे। बूढ़े किंग कैन्यूट ने यही सोचा था। तलवार चला-चलाकर वह बढ़-बढ़कर आनेवाली समुद्र की लहरियों को पीछे ठेलता जाता था।'

विनीता ने कहा—"मैं तुम्हें कलकत्ता वापिस जाने के लिए नहीं कह रही हूं। तुम्हारी जहां इच्छा हो, जाओ। पुरी के समुद्र-तट पर जाओ।"

"मैंने वहां समुद्र के बहुत बड़े-बड़े चित्र बनाये थे, पर मेरा मन भरा नहीं। वहां उस सागर को एक अंजुल में पी जाने वाली अगस्त्य का साहस मुझमें नहीं। मुझे एक आदिवासिनी लड़की ने बता दिया कि अकेला आदमी अधूरा है। जो अर्ध-नाम है वह अर्ध-भुवन है, यानी वह सदा बंधा हुआ है।"

विनीता—"वह कौन थी आदिवासिनी?"

शिवलाल—"वह मेरे लिए शक्ति की प्रतीक थी। वह देवी भैरवी बन गई। मैं उसे कभी नहीं पा सकूंगा। मुझे उसने बहुत अच्छी तरह बता दिया कि मैं आत्म-प्रतारक था।"

विनीता—"क्या वह तुमसे प्रेम करती थी?"

शिवलाल—"यह कहना कठिन है। हर शिव शक्ति से प्रेम करता है। पर शक्ति हर एक को शिव नहीं मानती।"

शिवलाल—"तो तुम्हें कलकत्ता नहीं, पुरी नहीं, तो केरल जाना चाहिए। वहां सुन्दर समुद्र तट है। गोआ जाना चाहिए…।"

शिवलाल—"मैं सब जगह भटका हूं। लापता, बेठिकाना जहाज की तरह घाट-घाट गया हूं। पर मेरा बंदरगाह वहां नहीं है, न कोच्चीन में, न पणजी में। मैं समझ गया हूं कि मेरी नौका डांड-हीन और पाहैल, हीन है। वह राह में ही टूट जायेगी।"

विनीता—"तुम कविता की भाषा में बोलते हो। समुद्र नहीं तो पर्वतराज तुम्हें अवश्य अपना पता देने में सक्षम रहा होगा।"

शिवलाल हंसा। फिर धीरे-धीरे बोला—"पहाड़ किसी से बोला नहीं करते। वे बड़े चुप्पे होते हैं। सिर्फ़ चांदनी रात में हंसा करते हैं। देवताओं का अट्टहास—वह हिमधवल महाराशि!"

विनीता—"मौन में ही वे उत्तर देते होंगे प्रश्नों के।"

शिवलाल—"उनकी भाषा सब नहीं समझ सकते। कुछ-कुछ रोरिक समझते थे। 'रुद्रवीणा' बजाने वाले मौन योगी पार्वती को समझते हैं शायद। बहुत लोग कैलाश-मानसरोवर की यात्रा कर आते हैं। कुछ अच्छे यात्रा-वर्णन लिखते हैं। कुछ अच्छे फोटो खींचकर लाते हैं। प्रज्ञानानंद की तरह सुन्दरानद की तरह पर हिमालय के गूढ़-रम्य सौन्दर्य को कौन समझ पाया है अब तक?"

विनीता—"यदि समुद्र नहीं, हिमालय नहीं तो आपकी असली पहचान पाने का आधार क्या था?"

शिवलाल—"ऐसा है विनीता, मैं खुद नहीं जानता कि मैं क्या खोज रहा था। मेरे दिमाग में ही कोई फितूर था। कुछ था जो मुझे एक जगह चुपचाप बैठने नही दे रहा था।"

विनीता—"पर ऐसा करने में शिवलाल—, तुम बुरा मत मानो, पर मैं तुम्हें चाहती हूं और उसी अधिकार से पूछती हूं—तुमने कितने लोगों पर अन्याय नहीं किया?"

शिवलाल—"मुझसे न्याय किसी ने मांगा ही नहीं था।"

विनीता—"इसलिए क्या तुम अन्याय करते जाओगे, सब पर?"

शिवलाल—"किस-किस पर मैंने अन्याय किया?"

विनीता—"सोचो—अब तुमने अपनी सारी कहानी बता दी है, तो पहले तो अपने पिता पर, जिसे कोई सूचना न देकर तुम भाग निकले।

फिर माई पर—जो तुम्हारे पीछे मारा-मारा फिरा। फिर एंटिम पर ऊपा पर, देवी पर, शीला पर, यहां तक कि विनीता पर भी तुमने अन्याय ही किया…।"

शिवलाल—"नहीं, मैंने किसी के साथ कोई बुराई नहीं की। मैं सबकी इज्जत करता रहा, मैं सबको प्रेम करता रहा।"

विनीता—"प्रेम सिर्फ दिखाया नहीं जाता। वह कुछ देने के लिए भी आगे बढ़ता है। वह झुकता भी है। जो प्रेम अहंकार को बढ़ावा देता है, जो 'मैं' से शुरू होता है, वह 'मैं' में ही आकर समाप्त हो जाता है।"

थोड़ी देर दोनों मौन रहे।

शिवलाल ने कहा—"मान लो क्षण-भर के लिए कि मैंने गलती की। तो अब उस सब पुरानी भूल से क्या निस्तार है? कहीं भी क्या प्रायश्चित्त की कोई गुंजाइश नहीं"

विनीता—"आत्मा खो देने पर शून्य ही हासिल होगा।"

शिवलाल—"नहीं, कोई तो उपाय होगा? कोई तो इसमें से रास्ता बतायेगा। इस सुरंग का कोई अंत होगा ही। यह भूलभुलैया जन्मजन्मान्तर नहीं चलेगी।"

विनीता—"वह राह भी तुम्हें ही बनानी होगी। वापिस जाने का मार्ग भी आंख पर पट्टी बांधकर जो लोग तुम्हें यहां तक लाए हैं, और यहां तक छोड़ गये हैं, वे नहीं बतायेंगे।"

शिवलाल ने कहा—"विनीता, मैं हार मान गया। अब तुम जो कहोगी वही मैं करूंगा।"

विनीता—"तो चलो, मैंने दो टिकट कालका मेल के कटाये हैं। शिमला से कालका, वहां से दिल्ली और दिल्ली से रामकृष्णपुरम्। अपने घर चलो।"

शिवलाल—"वे क्या कहेंगे?"

विनीता—"वे कुछ नहीं कहेंगे। उनकी आंखों में खुशी के आंसू होंगे।"

ही हुआ।

सरे दिन अरविंद अपने घर लौट गया। सब लोग चकित हुए। यहां क उसकी सौतेली मां, जिससे चिढ़कर वह घर छोड़कर भागा था— पहले तो अपनी आंखों पर विश्वास नहीं हुआ। बाद में उसी ने आरती री। उसे प्रणाम करने के लिए घर के छोटे बच्चों से कहा। मिठाई वाई। जश्न किया गया।

यह एक अद्भुत पुर्नमिलन था। इसमें सुख-दुख मिले हुए थे। पिता हुत क्रुद्ध था, पर अब वह एकदम शांत हो गया, सुप्त ज्वालामुखी की तरह।

बच्चों ने तरह-तरह के प्रश्न पूछने शुरू किये—"कहां थे, अंकल ! इतने दिनों तक आप...क्या करते रहे?"

पहले अरविंद के मन में आया कि सच-सच बता दूं। फिर डर लगा कि कहीं इस सचाई से आकर्पित होकर बच्चे वैसा ही 'मिस अंडवेंचर' (दुस्साहस) न कर बैठें।

सो अरविंद ने कहा—"मैं विदेश गया था।"

बच्चे—"कहां गये थे आप ?"

"मैं नई दुनिया में गया था।"

"वहां क्या देखा ?"

"वही समुद्र, जंगल, पहाड़। वे सब वैसे ही थे जैसे अपने देश में हैं।"

"पर वहां हमारे देश से अलग क्या था ?"

"वहां के आदमी।"

"उनमें अलगपन क्या था ?"

"वे सब अपने जीवन के उद्देश्य के वारे में सुनिश्चित थे। उनमें कोई भी निरुद्देश्य नहीं था।"

"क्या वहां वेकार नहीं थे ?"

"नहीं, वे हमारे देश की तरह नही थे। न इतनी संख्यायें, न इ... आशाहीन।"

"क्या वहां भिखारी नहीं थे ?"

"नहीं थे।"

"क्या वहां बच्चे मजदूर नहीं थे ?"

"नहीं थे।"

"यह ऐसा क्यों हुआ ? वह तो हमारे बाद की बसाई हुई दुनिया थी। फिर भी इतना अंतर ?"

"इसीलिए ऐसा अंतर था। हम सब अपने संस्कारों से जकड़े हुए लोग हैं। हमें अपनी पुरातन संस्कृति का अभिमान है। हम उसे छोड़ना नहीं चाहते। और नई दुनिया की सब अच्छाइयां भी चाहते हैं। खंडहर खंडहर भी बना रहे और फिर से राजमहल भी बन जाये, यह कैसे संभव है ?"

"हम आपकी बात पूरी तरह समझ नहीं पा रहे हैं, अंकल।"

एक दूसरे बच्चे ने पूछा—"आपको वह नई दुनिया इतनी अच्छी लगी तो आप वहीं बस क्यों नहीं गये ?"

"वहां बसना मना था।"

"क्यों ?"

"उन्हें डर था कि बाहर के लोग आकर हमारा सब सोना, हमारे सब वैज्ञानिक, गुप्त ज्ञान-विज्ञान, विशेषतः शस्त्रास्त्र आदि ले जायेंगे।"

"पर क्या नई दुनिया के लोग अपना सोना, शस्त्रास्त्र, वैज्ञानिक, उपकरण सब बेचते नहीं फिरते ?"

"हां, बेचना अलग बात है। हम अपने यहां का घटिया माल बेचकर ज्यादा मुनाफा कमा ही सकते हैं।"

"पर यह बताइये अंकल, सबसे मूल्यवान वस्तु क्या है ?"

"सोना ? शस्त्रास्त्र ? वैज्ञानिक ? उपकरण ?"

"नहीं, उनसे भी मूल्यवान क्या है ?"

"मैं नहीं समझा तुम्हारी बात।"

"अपनी पहचान। अपनी आत्मा।"

यह आखिरी उत्तर बच्चों ने नहीं दिया था। यह वहां पर आई हुई ऊषा ने दिया। उसका परिचय सबसे करा दिया गया।

विनीता ने ऐसी व्यवस्था कर दी थी कि जब वह यहां पहुंचे तो तुरंत बाद यहां ऊषा भी पहुंच जाये।

एंगल से।

दोनों के एन्लार्जमेंट साथ-साथ थे।

और अरविंद अपने घर लौट आया था, बिना किसी की कोशिश के। घरवाले उसका पता पा चुके थे।

अब वे इस फिक्र में थे कि कहीं वह पुनः भाग न जाये।

कृपा फिर अरविंद से आकर मिल गई थी। जीवन की भागमभाग अब अपनी दौड़ के आखिरी मुकाम पर आ पहुँची थी।

संगीत फिर 'सम' पर आ गया था। आदि कवि ने पुनः छन्द का प्रथमाक्षर पा लिया था—'मा…'

## शेष प्रश्न

कुछ ऐसे प्रश्न होते हैं जिनके उत्तर निःशेष होते हैं।

डाकघर में मैंने एक 'मृत पत्रों का कार्यालय' देखा है। पत्र जिसे भेजा गया है उसे न पहुंचने से 'टेस डि आरबरविले' में हार्डी कैसी ट्रेजेडी की धार बढ़ाता है।

अन्तोन चेखफ़ की एक कहानी में एक बच्चा अपनी मरी हुई मां को ईश्वर के ठिकाने पर चिट्ठी भेजता जाता है। 'शरणार्थी' में 'अज्ञेय' की भी ऐसी ही एक कहानी है।

एक चिट्ठी गलत जगह पहुंच जाने से कितनी गलतफ़हमियां बढ़ जाती हैं।

यह सब तो पत्रों के मामले में होता ही रहता है। जो सही ठिकाने पर चिट्ठियां नहीं पहुंचतीं, वे नष्ट कर दी जाती हैं।

परंतु हर आदमी भी एक तरह का पत्र ही होता है। एक संदेश-वाहक। कई बार वह भूल जाता है कि कौन-सा संदेश वह वहन कर रहा होता है। वह अपना संदेश स्वयं नहीं जानता।

होता यह है कि वह निरा लिफाफा होता है, या एक 'निमित्तमात्र'। 'यंत्रारूढानि मायया'—यह मनुष्य जिस सन्देश को ले जाता है वह शब्दों में नहीं होता। वह एक ऐसी लिपि में होता है, जो मोहन जोदड़ो की चित्रलिपि की तरह उसके लिए अगम्य होती है।

नहीं-नहीं। वह संकेताक्षर होते हैं। वह अपने हृत्पटल पर एक तरह की 'गुप्त भाषा' (कोड लैंग्वेज) लेकर चलता है।

(इस कहानी में स्मगलर लोग कई नामों से चेहरा बदल-बदलकर घूम रहे थे! कभी वे नेता बन जाते हैं, कभी अभिनेता! पर उद्देश्य उनका

सब एक ही होता है।)

इन सबकी शिकायत एक ही होती है—'म्हारो दरद न जाने कोय'

ये सब 'एक हिलोर इधर से आई, एक हिलोर उधर को जाई' वाले दिशाहीन वायु-संकेत होते हैं।

कभी हम उन्हें पढ़ पाते हैं, कभी नहीं पढ़ पाते।

'शांतिया दबे पाँव आती हैं'—नीत्शे ने कहा था।

तो जल्दी-जल्दी में उसे बनाने वाले ने उस कबूतर के गले में जो सन्देश लिखा वह या तो अधूरा ही लिखा था, कहाँ पहुँचाना है! यह पता लिखा ही नहीं। ऐसे भी कई लोग होते हैं।

पर समुद्र में चारों ओर लहरियों से घिरे एक एकाकी द्वीप पर कुछ नाविक अकेले पड़े हैं। वे बोतलों में बंद करके अपनी परिचित लिपि में सन्देश भेजते रहते हैं—तरंगों में उछाल देते हैं—कि कभी न कभी, कोई न कोई, कहीं न कहीं, इस सन्देश को पायेगा और इनका उद्धार करने आ जायेगा।

मनुष्य की आशा बदलती है। जब तक सांसा, तब तक आशा।

इसे मार्क्सवादी शब्दों में कहा जाये तो यह एक ऐतिहासिक अनिवार्यता है कि मनुष्य संघर्ष करे—बेहतर ज़िन्दगी के लिए। पत्थर की चकमक से आग पैदा की। अरणि से मन्थकुंड बना तो भूनकर अन्न खाने लगा। आग से खेत के बचे शस्य-मूल जलाकर 'झूम' की खेती की। वह सभ्य और 'सुसंस्कृत' बनने लगा। खेती में उसने पालतू जानवर लगाये। दास-दासी रखे। धीरे-धीरे उसका ग्राम-राज्य बनने लगा। वह उसका भू-स्वामी, ज़मींदार, जागीरदार, ठाकुर, 'फ्यूडल लार्ड', हाकिम, 'गो'-स्वामी बना। उसके लिए शास्त्र बने। राजा को विष्णु का अंश बनाया गया। राजा कालस्य कारणम्। कालाय तस्मैनम ...

राजा से महाराजा बनते कितनी देर लगती है। युद्ध हुए। साम्राज्य बने। थल सेना, जल सेना, वायु सेना, अंतरिक्ष सेना...

मनुष्य-मनुष्य में खतरा लगा।

जिस ज़मीन को वह जोतता था उसी से वह अलग-अलग हो गया। जंगल तो कभी का पीछे रह गया था। जिस यंत्र को उसने बनाया कि वह उसके श्रम को कम करे — उलटे उस यंत्र ने जो वस्तु पैदा की उसी से उसका अलगाव बढ़ता गया। एक तरह से वह अपनी पहचान धीरे-धीरे खोता गया।

जो वस्तु उसने बनायी, वह उसे मिली नहीं।

मालिक को सिर्फ़ मुनाफ़ा मिला। वस्तु तो यंत्र से दूर ही होती चली गई।

मनुष्य और मनुष्य के बीच में अब धर्म-ग्रंथ, कानून की पुस्तक, राज्य-संस्था नहीं — पैसा आ गया। वही पुल था, वही दीवाल थी।

मनुष्य पैसे से भी अजनबी बनता चला गया। उसकी आत्मा को उसने इटैलियन सगीतकार पैगानिनी की तरह से शैतान को बेच दिया।

इसी बात को धर्म और अध्यात्म की शब्दावली में कहा गया कि मनुष्य अपने स्रष्टा, अपने निर्माता, ईश्वर से दूर हो गया था। ईश्वर उसके लिए कोहरे में ढंकी सच्चाई बन गया।

ईश्वर सोचने लगा कि अरे, यह जो मैंने निर्मित किया था, वह कहां गया? क्या वह उस मां की तरह था, जिससे उसका बच्चा कहीं दूर चला गया है। या जो जंगल में राह भटक गया है।

क्या वह यशोदा का कृष्ण है, या देवकी से वह दूर भाग गया है? क्या वह अज्ञातवास में है?

अकिलस की मां, जब वह शिशु था तो नदी पर ले गई। वह उसके हाथ से फिसलकर नदी में बह ही जाता कि उसकी एड़ी अकिलस की मां के हाथ में बनी रह गई—वह अवध्य बनी।

गांधारी को अभिशाप था कि वह अपने बच्चे को देख न सके। और जब वह दुर्योधन को एक बार देखकर अमर बनाने वाली थी कि कृष्ण ने उसे फूलों की जंघिया पहना दिया। उतना ही उसका अंश वेध्य बन गया।

मनुष्य घर से भूला-भटका एक मुसाफिर है। वह सुबह का भूला शाम

को लौट भी आ सकता है।

पर कई नक्षत्र मूल ज्योतिष्पिंड छूटकर सिर्फ आकाश को क्षणभर आलोकित कर क्षार-क्षार हो जाते हैं। वे उपलमय होकर पृथ्वी पर खंड-खंड बिखर जाते हैं। उल्काओं से कोई उनका पता नहीं पूछता।

यह इस तरह से धुरी-हीन प्राणी क्यों बन जाता है? क्या यह उसके अपने हाथ में है?

सारे मर्मी और रहस्यवादी कवि कहते हैं कि इस पर उसका बस नहीं।

'गुरुबिन कौन बतावे बाट, विकट घाट जमघाट···

'भंवर में नैया परी, उस पार खिवैया···

'लगा दे मोरा ठिकाना, मोरे कान्हा'···

'शिवम् शरण केवलम्···'

आदि-आदि। सब धर्मों में, सब पंथों में मनुष्य की यही असहाय अवस्था है। मानों वह इस भवसागर में धकेल दिया गया है। तैरना जानता नहीं। और 'कोई' शक्ति है, जो उसका उद्धार करेगी। उसे उठा लेगी। रक्षा करेगी, सब संकटों में···

मनुष्य ने यहां आस्था का दीप-स्तंभ सदियों से बनाया था।

उसे उन्नीसवीं सदी तक आते-आते विज्ञान के हाथों उसने स्वयं ध्वस्त कर दिया।

नीत्शे ने कहा—'क्या यह तुम्हारे लिए समाचार नया है कि ईश्वर ने कभी की आत्महत्या कर ली!'

मार्क्स ने कहा—'नहीं है इस विश्व का कोई बनानेवाला, न संहार करने वाला।'

मनुष्य ही मनुष्य को डुबोने वाला और डूबने से बचाने वाला है।

तो, अब इस लापता मनुष्य का पता भी मनुष्य को ही खोजना होगा।

कैसे खोजे वह यह पता ? कई तरह के उत्तर मिल रहे हैं
"कला से ?"
"हृदय की वाणी', 'भीतर की आवाज़', 'अन्तर्प्रज्ञा' से ?"
"धर्म और विज्ञान के समन्वय से ?"
"इतिहास से सबक लेकर, उसी के मानचित्र के सहारे ?"
"प्रयत्न और गलती करते जाने' (ट्रायल एंड एरर) से।"
"सही शिक्षा से ?"
"संयोग से।"

सब आदमी सब तरह की खोज में माहिर नहीं होते। ज्योतिषी दूरबीन से देखते हैं। पनडुब्बी में बैठकर समुद्रतल का खोजी अवगाहन करता है। अन्तरिक्ष यात्री ग्रह-नक्षत्रों तक पहुंचना चाहते हैं। जंतु शास्त्रज्ञ सूक्ष्मवीक्षण यंत्र से देख रहे हैं। बर्फ में जहाज रास्ता काटता हुआ एंटार्टिका (दक्षिण ध्रुव) और साइबेरिया में अतल और अगम की खोज कर रहा है।

मन के भीतर कितने और मन हैं ? पराविद्या क्या है ? तंत्र तन और मन के बीच क्या क्या रासायनिक और भू-तांत्रिक परावर्तनों में पैठना चाहता है ?

मनुष्य की खोज जारी है—भीतरी, बाहरी। यहां, वहां।

कहीं उसे शांति या तृप्ति नहीं है।

क्योंकि मनुष्य को अपना सही पता, अपनी मंज़िले-मक़सूद अभी हासिल नहीं हो सकी है।

जो कहानी आपने पढ़ी, उसके भी पात्र इसी उधेड़-बुन और भटकन में मुब्तिला थे। हमने उन्हें कुछ झलकियों में नज़दीक से देखना चाहा।

"पते की बात' हम भी नहीं पा सके।"

पर शायद वे नष्ट होने से बचा लिये जा सके पत्रों जैसे हैं। उन्हें

ठिकाना बदलकर फिर भेज दिया गया है। कुछ बैरंग भेजनेवाले के ही पास पहुंच आये हैं। कुछ के पते ज्यादा साफ लिखावट में पुनः लिखवा लिये गये हैं। कुछ सही पते पर पहुंचे। पर वहां जिस 'तक' पहुंचना था, वही नहीं है। वह वहां से जा चुका है, या इस मर्त्यलोक से ही कूच कर गया है।

ऐसे सब प्रश्नों से घिरे हैं हमारे चरित्र, हमारे पात्र, हमारे लापता मित्र…

"पत्र कुशलं तत्रास्तु' कुछ पर लिखा है।"

"कुछ खुले हैं, कुछ बद हैं।"

"कुछ रजिस्टर्ड हैं, कुछ अनरजिस्टर्ड।

"कुछ विद्या से भरे हैं, कुछ अविद्या से।"

"कुछ पुराने ही कागजों पर नये बंडल हैं तो कुछ नये कागजों में लिपटे पुराने बंडल—कुछ पत्र-बम"।

"हम सब पात्र नहीं', पत्र हैं।"

'पत्र', पुष्प, फलं, तोयम्'

(यह तेरह अक्षरों की एक चित्र-बंधात्मक कविता है, जैसे पत्ता गिर रहा हो, इसमें लिखा है 'ए लीफ़ फालिंग' और ब्रैकेट में 'लोन्लीनेस')

एक पत्ता गिरता है
अकेला झरता है
उसका क्या पता है ?